राधाकान्त

एक सामाजिक उपन्यास ।

सौन्दर्य्योपासक, मैथिल कोकिल आदि अनेक
ग्रन्थोंके रचयिता ([illegible])

बाबू ब्रजनन्दन सहाय

वकील तथा मन्त्री नागरीप्रचारिणी सभा आरा

द्वारा लिखित ।

हरिदास एण्ड कम्पनी

नं० २०१ हरीसन रोड, कलकत्ता

द्वारा प्रकाशित ।

सन् १९१२

२०१, हरीसन रोड कलकत्ते के नरसिंह प्रेसमें

बाबू रामप्रताप भार्गव

द्वारा मुद्रित ।

प्रथमबार १०००] [मूल्य ॥)

समर्पण ।

प्यारे राधिकाकान्त !

आज एक नवीन उपहार लेकर तुम्हारे सामने उपस्थित हुआ हूँ। आशा है कि, यह तुम्हें रुचिकर होगा। संसार की सब प्रतिभाएँ तुम्हारी प्रतिभा की बिम्ब है, पार्थिव सब रचनाएँ तुम्हारी विचित्र रचना के आधार पर होती हैं; अतएव सबके रचयिता यथार्थ में तुम्हीं हो, इस सम्बन्ध से भी यह तुम्हारी ही वस्तु है। इधर मैं भी तो तुम्हारा ही ठहरा; अस्तु जिसे संसार मेरा कहता है वह भी तो तुम्हारा ही है। फिर अपने पदार्थ को आप क्यों नहीं ग्रहण करोगे ? अच्छा, और कुछ नहीं तो नामके नाते ही सही; इस "राधाकान्त" को अङ्गीकार करो। और अपने विषय में तुमसे क्या कहूँ ? सब तो जानते ही हो, जो उचित समझो करो। किन्तु ऐसा करो कि तुम्हारी रुचि मुझे सदा रुचिकर लगा करे।

तुम्हारा एक मात्र

ब्रजवल्लभ ।

भूमिका ।

प्रिय पाठकवर्ग !

आजकल उपन्यासों का बाजार इतना गरम है कि, कभी कभी लोगोंको उपन्यासों का नाम सुनकर नाक भौं सिकोड़नी पड़ती हैं: क्योंकि उपन्यासोंके नामके साथ कितने ऐसे ग्रन्थोंका स्मरण हो आता है कि जिन के देखने में जो समय लगता है वह व्यर्थ हो जाता है, क्योंकि उनसे किसीको कभी लाभ होनेकी सम्भावना ही नहीं होती! तब प्रश्न यह उठता है, कि ऐसी पुस्तकोंका इतना अधिक प्रचार क्यों हो रहा है? इसका कारण यह है कि देशमें अविद्या के फैलने से हम लोग ऐसी पुस्तकें पढ़ना चाहते हैं कि जिनमें परिश्रम न हो और विलासिताके फैलने से हमलोगोंकी रुचि भी सब प्रकार भ्रष्ट हो रही है। किन्तु विचारने की बात यह है कि, यदि पाठक लोग ऐसे हो रहे हैं तो हम लोग उन्हें इसमें साहाय्य क्यों प्रदान करते हैं? यह बात तो माननी अवश्य पड़ेगी कि, साधारण

लोगों से लेखकों तथा ग्रन्थकारोंकी प्रतिभा अधिक उज्ज्वल है और यदि ऐसा नहीं है तो क्यों कोई ग्रन्थकार होनेका दावा करेगा ?

ग्रन्थकारोंको उचित है कि वे अपने उत्तरदायित्वको समझें। ऐसे उपन्यास वा ऐसी पुस्तकें कदापि न लिखनी चाहियें कि आगे चलकर उनके कारण समाज वा देश पर कलङ्क लगे। इतिहास उतने दिन नहीं रहता, जितने दिन कविता, उपन्यास तथा नाटक रहते हैं और जितने लोग इन विषयों को पढ़ते है उतने लोग इतिहास को कदापि नहीं पढते। इस का परिणाम यह होता है कि, भविष्यमें उपन्यास आदि ही के सहारे लोग समाज देश तथा जातिकी रीति नीति एवं आचार विचार से अवगत होते है। देखिये, आज "मुद्राराक्षस" नाटक को देखकर अँगरेज़ इतिहास-लेखक कहते हैं कि, जिस समय "मुद्राराक्षस" लिखा गया, उस समय भारतवर्ष में 'परदा प्रणाली" व्यवहार में आ गयी थी और हिन्दू-कुल-रमणी घरसे बाहर नहीं होती थी और लोगों का जो यह अनुमान है कि मुसल्मानों के आगमन से यहाँ परदे का प्रचार हुआ यह सर्वथा निर्मूल है। इसके प्रमाण में लोग दो बातें कहते हैं—एक तो यह कि इस नाटकमें कोई स्त्री पात्र "स्टेज" (रङ्गभूमि) पर नहीं आयी है और

दूसरो यह कि जब चाणक्य का दूत चन्दनदास जौहरी के घर चित्र दिखाने गया था तो वहाँ एक बालक "परदे" को आड़ से बाहर निकला। उस समय परदे के भीतर स्त्रियों में कलकल मचा और एक स्त्री द्वारके बाहर मुँह निकाल कर बालक को भीतर पकड़ ले गयी। इसी प्रकार समालोचकों का अनुमान है कि, प्राचीन कालसे भारतवासी आत्माके अमर होने और इस सिद्धान्त पर कि एक आत्मा मरण के बाद विविध चोलोंमें प्रवेश करता है विश्वास करते थे। क्यो-कि कादम्बरी के नायक ने कई कलेवरों में प्रवेश कर, विविध रूपोंको धारण किया था। इधर "मेन" कृत "एनशीयण्ट लॉ" (Maine's Ancient Law) के पाठकों को विदित है कि कानून सम्बन्धी रहस्य (Homer) की कविता से निकाले जाते हैं। उदा-हरण को बढ़ाने का काम नहीं। कहने का तात्पर्य्य यह कि, उपन्यास-लेखकोंको उपन्यास बहुत सोच विचार कर लिखने उचित हैं। यह कभी नहीं चाहिये कि, अँगरेज़ी उपन्यासों के आधार पर, जिसके जीमें जो आवे लिख बैठे। नहीं तो आगे चल कर बहुत भ्रान्ति उत्पन्न होगी। जिस प्रकार बुरे लोगोंकी संगति से मनुष्य का चाल चलन बिगड़ जाता है; उसी प्रकार बुरी किताबों के पठन-पाठन से भी मनुष्य आचार-

भ्रष्ट हो जाता है। वरन् सङ्ग-दोष मनुष्यों से पुस्तकों का अधिक पड़ता है; क्योंकि पुस्तकों का प्रभाव हम लोगों पर बहुत, ज़ियादा पड़ता है।

आज कल के उपन्यासों में विशेष ऐसे ही हैं कि जिनमें पात्रों का चरित्र तथा भाव भली भाँति वर्णन करनेका कष्ट नहीं उठाया गया, उनके मनोगत भावों को कभी पाठकों पर प्रकटित किया नहीं गया। इधर भी आधुनिक लेखकों को ध्यान देना चाहिये।

पहले मेरा ध्यान था कि यदि इस ढँगका उपन्यास लिखा जायगा तो लोग उसका आदर नहीं करेंगे; क़दाचित इसी भयसे ग्रन्थकर्त्ता ऐसी पुस्तकों की रचना नहीं करते। किन्तु जबसे "सौन्दर्य्योपासक"का रसिकोंने यथोचित् आदर किया तबसे मेरा यह भ्रम मिट गया।

इस अवसर पर, मैं उन महानुभावों को आन्तरिक धन्यवाद देता हूँ कि जिन लोगों ने मेरे 'सौन्दर्य्योपासक" का उचित आदर किया है और आशा करता हूँ कि यह क्षुद्र उपहार भी अङ्गीकार करेंगे।

अपने पाठकों से इस पुस्तक के विषय में मुझे कुछ विशेष कहना नहीं है; क्योंकि इसे पढ़ कर लोग इस के गुण दोषों को आप ही जान लेंगे। किन्तु भूमिका लिखने की प्रथा प्रचलित देख कर, मुझे भी अपने

पाठकों से भूमिका के रूपमें यह कहना है कि जब घटना-पूर्ण, अश्लीलतामय, चरित्र-नाशी, रसीली कहानियाँ पढ़ते पढ़ते आप लोगोंका जी ऊब जाय तब आप लोग इसे अपने हाथमें लीजियेगा और देखियेगा कि आप लोगोंके मन को इस से कुछ विश्राम मिलता है वा नहीं; आप लोग कुछ सुख शान्ति इसमें अनुभव करते हैं वा नहीं।

घटना की ओर विशेष ध्यान न देकर, निबन्ध रूप से इस में वर्णना दी गयी है। इसका लक्ष्य यह है कि, स्कूल तथा कॉलिज के विद्यार्थियों को भी निबन्ध लिखने में इस से किञ्चित् सहायता मिल सके।

आधुनिक भावों और घटनाओं का इसमें यथेष्ट समावेश है। जिसमें परोक्षरूप से सामाजिक कुरीतियों पर साधारण आलोचना की गयी है।

बङ्ग नाटककार श्रीयुत गिरीश चन्द्र घोष कृत "बाङ्गाल" नाम्नी एक छोटीसी कहानी के आधार पर इस उपन्यास के प्रथम खण्डकी रचना स्वतन्त्र रूप से की गयी है; किन्तु दूसरे खण्ड में कहींसे सहायता नहीं ली गयी है। प्रथम खण्डका कथा भाग तो "बाङ्गाल"के आधार पर लिखा गया है; किन्तु वर्णना-भाव तथा विचार सब स्वतन्त्र हैं।

अब यह राधाकान्त जैसा है, आपलोगों के हाथ में देकर, कुछ दिनोंके लिये विदाई लेता हूँ।

बाबू बाजार,
आरा,
ता: ३०।७।१२।

भवदीय—
ग्रन्थकर्ता।
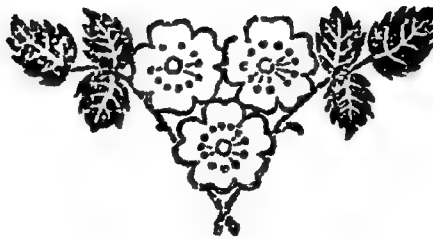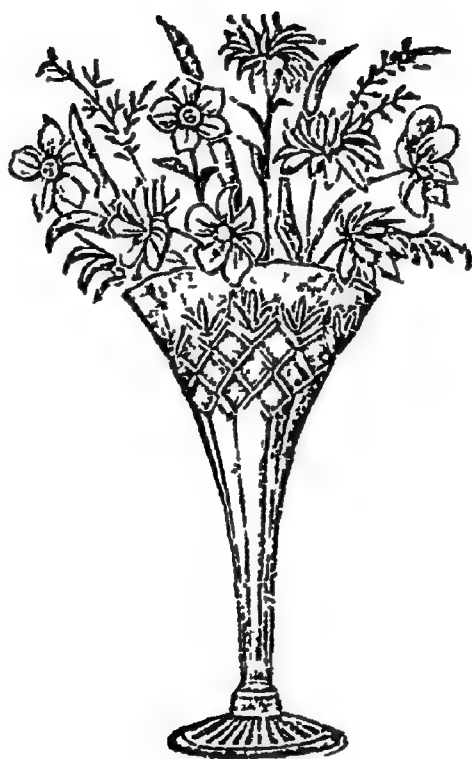
॥ श्री ॥

राधाकान्त

राधाकान्त की आत्मकहानी।

प्रथम खण्ड।

पहला परिच्छेद।

मैं और हरेन्द्र स्कूलमें एक साथ पढ़ते थे। मैं एक किसान का लड़का हूँ और मेरा घर देहातमें है। मैं साधारण कुलका बालक हूँ। मुझे यदि दरिद्र-सन्तान भी कहा जाय तो कुछ अनुचित नहीं होगा। लड़कपन में मेरा स्वभाव सरल था। लिखने

पढ़नेमें मेरा जी बहुत लगता था और किसी को अपने व्यवहारसे मैं कभी असन्तुष्ट नहीं करता था। किन्तु उन सब संसारी सुखोंसे मैं वञ्चित था जो बहुधा धन द्वारा लोगोंको प्राप्त होते हैं। साधारण भेषमें, मैं स्कूल जाता और सदा अपने अध्यापकको अपने मनोयोग और परिश्रमसे सन्तुष्ट रखता था।

हरेन्द्र बड़े घरका लड़का था। उसको यथेष्ट सम्पत्ति थी। स्कूलमें जोड़ी गाडी पर चढ़कर वह आता था। साथमें अरदली और नौकर आते थे। चाँदीके कटोरेमें पीनेको दूध आता था। किन्तु पढ़ने लिखनेमें उसका उतना मन नहीं लगता था। उससे सभी डरते थे। उसको इच्छा के विरुद्ध कभी कोई कुछ कहता सुनता नहीं था। यहाँ तक कि माष्टर भी उससे भय खाते थे। मेरी आँखोंमें हरेन्द्र देवता था। उस पर मेरी बडी श्रद्धा थी। किन्तु वह मुझे देहाती कहकर पुकारा करता था। मैं समझता था कि हरेन्द्र का जीवन आदर्श है। संसार में उससे बढ़कर सुखी कोई नहीं है।

स्कूलके दिन बीत गये। हम दोनों संसारमें अपना अपना कर्तव्य पालन करनेमें दत्तचित्त हुए। जीविका अर्जन करनेके हेतु, मैं कर्म-क्षेत्रमें दिन रात परिश्रम करने लगा। हरेन्द्र अपनी अनन्त सम्पत्ति को स्वच्छन्द

भोगने लगा। हरेन्द्र मुझे अपने सुखोंमें भूल गया। किन्तु मैं उसे नहीं भूल सका।

भला जिनके संग हम लोग लड़कपनमें स्नेह करते हैं, जिनके संग सदा बैठा उठा करते है, और जिनके साथ सदा पढ़ा लिखा करते हैं, उनमेंसे कितनोंको हम लोग युवा होने और गृहस्थीका बोझ सर पर उठाने बाद याद रखते हैं ? समयके तीव्र प्रवाहमें सब पूर्वस्मृति डूब जाती है। फिर कभी कभी ऐसा समय भी आ जाता है कि जिसे देखे बिना रहा नहीं जाता था उसे अपनी आँखोंके सामने खड़ा देखकर भी पहचानना कठिन हो जाता है।

परन्तु मेरे हृदय-पट पर हरेन्द्रका चित्र ऐसे गाढ़े रङ्ग और पुष्ट अङ्कोंसे अङ्कित था कि यदि मैं इच्छा करता तोभी मैं उसे भूल नहीं सकता था। काल और देशका अन्तर उसे कदापि फोका न कर सके, और यहाँ तो हम दोनों एकही स्थानमें रहते थे। वह मुझे देखता हो वा नहीं, किन्तु मैं तो उसे सर्वदा देखा करता था। मुझे देख कर भी हो सकता है कि वह मुझे पहचानता न हो, किन्तु मैं तो दूर ही से उसे पहचान लेता था। धनकी अधिकतासे सुनता हूँ कि लोगोंकी दृष्टि-शक्ति मन्द पड जाती है और स्मरण-शक्ति भी वैसी प्रबल नहीं रहती। मैं जानता था कि हरेन्द्र

की भी वही दशा है इसीसे मुझे पहचानने में वह असमर्थ है।

हम दोनों एकही नगरमें रहते थे। कलकत्ते की एक दूकान में, मैं किरानी का काम करता था और वहीं एक मुहल्ले में हरेन्द्र अपने बबुआनी ठाट में रहता था। कभी कभी गरदन पर छाता लिये, साधारण धोती कुर्ता पहरे, जब मैं सड़क पर चलता तब मेरी दृष्टि तीर-वेगसे दौड़ती हुई हरेन्द्रकी टमटमपर पड़ती। कभी चौकड़ी के घोड़ोंकी टाप सुन, जब मैं पीछे देखता तब मेरी आँखें हरेन्द्रकी चार घोड़ोंकी गाड़ीसे लड़तीं। जहाँ हरेन्द्र पहुँचता चोबदार चारों ओरसे मनुष्योंकी भीड़ हटा देते थे। मेले तमाशे में, मैं उसे देखता किन्तु उसके निकट जानेका साहस नहीं होता। चारों ओर प्यादे खड़े रहते थे। इच्छा होने पर भी, मैं हरेन्द्रके निकट नहीं पहुँच सकता था, यहाँ तक कि उसको छाया छूनेका भी मुझे सौभाग्य नहीं होता था। जिस ओरसे हरेन्द्र निकल जाता था, वहाँ सुगन्ध द्रव्य का सौरभ फैल जाता था। उसके ठाटबाटको देखकर किसकी आँखें उसकी ओर नहीं जातीं ? कभी किसीने दिनमें दो बार उसे एक पोशाकमें नहीं देखा। लोग उसे "शौकीनों" का आदर्श मानते थे। साधारण लोग उसके अनुकरण करनेकी सदा इच्छा करते थे। सभी

यही अनुमान करते थे कि हरेन्द्रसे अधिक सुखी संसारमें कोई विरला ही होगा।

हाय! संसारकी क्या रीति है? पराये वाह्यभेष भूषाको देखकर हम लोग कैसे मुग्ध हो जाते हैं। बाहरी चमक दमक पर हम लोग ऐसे भूल जाते हैं कि एक बार भी यथार्थ आन्तरिक अवस्था पर विचार नहीं करते। हम लोग एक बार भी यह अनुसन्धान करने की चेष्टा नहीं करते कि सुन्दर और बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंके भीतर चिन्ता अथवा शोकानल धधक रहा है वा नहीं। हम लोग यह भी जाननेकी इच्छा नहीं करते कि जो वस्त्राभूषण व्यक्ति विशेषके शरीरको ढाँक रहे हैं वे उसे क्योंकर हस्तगत हुए, अथवा उस सुन्दर देव-विनिन्दक भेषने किन किन दुर्गुणोंको छिपा रखा है। यदि हम लोग सबकी प्रकृत अवस्था जानते अथवा जाननेकी चेष्टा करते; तो हम लोगोंको ईर्षा और द्वेषकी आगसे इस प्रकार जलना नहीं पड़ता। यह समाजका दोष है कि हम लोग बाहरी ठाटबाट पर इस प्रकार मर रहे हैं। अपने वित्तके बाहर व्यय कर, अपनेको आजके दिन समाजमें उच्च आसन ग्रहण करनेकी चेष्टा करते हैं। अपने मन, प्राण तथा आत्मा को कलुषित कर अपने शरीरकी शोभा बढ़ाते हैं। हाय! क्या हम लोग समाजसे इस दोषको हटा नहीं

सकते ? अपनी आत्माकी ओर नहीं देख, अपने शरी-रके सुख सौन्दर्यकी वृद्धिके लिये हम लोग इस प्रकार क्यों व्याकुल रहते हैं ? क्या वस्त्राभूषण हम लोगोंकी आत्मामें बलका सञ्चार करते हैं ? क्या हम लोगोंके अन्तःकरणको शान्तिका आवास बनाते हैं ? हम लोगोंके दग्ध हृदयको शीतल करते है ? यदि नहीं, तो फिर क्यों हम लोग इनके लिये इतने चिन्तित रहते है ? किन्तु इन बातों पर विचार करनेका कष्ट कौन उठाता है ? जब समाजका नियम ही ऐसा है, तब क्या मैं इस नियमका अपवाद था ? नहीं ! ऐसा नहीं। औरों की तरह मैं भी हरेन्द्रको ओर देख देख कर मन ही मन दुःखी हुआ करता था कि, मै भी क्यों इस योग्य नहीं हुआ कि अच्छा वस्त्र परिधान कर उसके पास पहुँच सकूँ। आन्तरिक दोष गुण पर विचार न कर, उसके हृदयकी ओर ध्यान न दे, मैं जब कभी उसे देखता तब यही सोचता कि क्या कभी मैं उसके समीप पहुँच सकता हूँ ?

दिन बीतते गये। जो जिस अवस्थामें था उसी अवस्थामें रहा। क्या इच्छा करनेसे किसीकी अवस्था बदलती है ?

दूसरा परिच्छेद।

सन्ध्याका समय है। आकाश मेघोंसे ढँका हुआ है। मेघ पर मेघ उसके ऊपर मेघने आकर पृथ्वीको अन्धकारसे घेर लिया है। आकाश में तारे नहीं है, चन्द्र नहीं है, नीलिमा नहीं है, किसी प्रकार का प्रकाश नहीं है। रह रहकर विद्युत का प्रकाश हो जाता है। मेघका गर्जन सुन हृदय काँप उठता है। क्रमशः वृष्टि होने लगी। देखते देखते रजनी घोरतर हो गयी। गगन से जल-धारा गिरने लगी। घोर नादसे दामिनी दमकने लगी। अपने घरमें एक शय्या पर पड़ा मैं चिन्तामें डूबा हुआ था। भाड़ेका घर जहाँ तहाँ चू रहा था। सारे दिनके परिश्रमके कारण मेरे शरीरमें पीड़ा हो रही थी। मेरे मनमें आया कि, इस समय हरेन्द्र कैसे सुखसे अपनी वृहत् अट्टालिकामें सोया होगा।

मैंने सोचा कि ईश्वर ऐसा अन्याय क्यों करते हैं? किसीको अनन्त सम्पत्ति देते है और किसीको अन्नके एक दानेको भी तरसाते है? यदि हरेन्द्रके धनका एक अँश भी मुझे मिलता, तो किस सुखसे मैं अपनी जीवन-यात्रा सम्पन्न करता? क्यों किसीको दैवात् अनन्त

धन दूसरेसे मिल जाता है और वह बिना कुछ काम काज किये सुखमे अपने दिन बिताता है और दिन रात परिश्रमसे अपनी हड्डियोंको तोड़कर भी मैं, सुखसे, भर पेट खा नहीं सकता और सब आनन्द और सुख की बातें तो दूर रहीं।

इस समय कितने भिखारी, जिनको ठहरनेको कहीं जगह नहीं है, इस नगरमें किस दुःखसे अपना समय बिताते होंगे? कई दिनोंके उपवासके कारण उनके शरीर और मनकी क्या अवस्था होगी? किन्तु क्या इस ओर भूल कर भी उन धनवानोंका ध्यान आता है जो अपनी अटारियोंमें रमणियोंके संग इस पावस-रजनी को चैनसे बिताते हैं? अधिक भोजनसे जिन्हें सदा अजीर्ण ही हुआ रहता है, वह क्योंकर समझ सकते हैं कि भोजन किये बिना भी मनुष्य मर सकता है और कितने मरते ही हैं? किन्तु क्या धनके पा लेने पर मनुष्य को ये सब बातें याद रहती हैं? औरोंकी तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु मुझे तो आगे चलकर अपनी इस अवस्था का स्मरण नहीं रहा। इस विषम समस्याकी मीमांसा आज तक नहीं हुई और मैं सन्देह करता हूँ कि आगे चलकर भविष्यमें भी न होगी।

थोड़ी देरमें मेरे मन-मन्दिरमें आशा देवीका पदार्पण हुआ। मैंने सोचा कि मैं ऐसा अधीर क्यों हो रहा

हूँ। मेरे सन्मुख विस्तृत संसार पड़ा हुआ है, मेरे शरीरमें यथेष्ट बल तथा पुरुषार्थ है, मनमें वासना की कमी नहीं है,तो फिर मैं हताश क्यों हो रहा हूँ ? मुझ से कम बुद्धि रखनेवाले जब दुनियामें मान बड़ाई और सम्पत्ति पा रहे हैं तब समय पाकर मेरा दिन क्यों न फिरेगा ? एक दिन न एक दिन मेरा समय भी अवश्य पलटा खायगा। अभी मैं बहुत अल्पवयस्क हूँ। क्या इतनी जल्दी मैं आशाका संग छोड़ सकता हूँ? सौभाग्य-चक्र एक दिन मेरी ओर अवश्य फिरेगा। आज जिस प्रकार मैं इस चक्रके नीचे कुचला जा रहा हूँ ; हो सकता है कि एक दिन यह मुझे ऊपर उठालावे ; कौन कह सकता है कि कल मैं किसी ऊँचे पद पर न पहुँच जाऊँगा ?

आज पहला दिन नहीं है कि, मैं आशाके प्रलोभमें पडकर अपनी वर्त्तमान अवस्था को भूल रहा हूँ। जब मैं स्कूलमें पढ़ता था तब भी कई बार घण्टों बैठा, मैं यही सोचा करता था कि विद्या-उपार्जन समाप्त होनें पर मैं किसी बड़े पद पर निश्चय पहुँच जाऊँगा। किन्तु वह बात वहीं की वहीं रह गयी। कार्य्य-क्षेत्रमें पदार्पण करतेही मेरा सुख-स्वप्न भङ्ग हो गया! मेरा भ्रम मिट गया।

इसी अवस्था में नाना प्रकार की चिन्ता करता

हुआ, मैं सो गया। आँख झिपते ही मैं स्वप्न-राजमें भ्रमण करने लगा। मैंने देखा कि एक विस्तृत वाटिकामें, मैं अकेला टहल रहा हूँ। कहीं कोई दीख नहीं पड़ता। केवल सामनेके विटपों पर पक्षी चहचहा रहे हैं। क्यारियोंमें नाना प्रकारके पुष्प विकसित हैं जिनकी सुगन्ध चारों ओर फैल रही है। सामने संगमरमरकी सीढ़ियोंसे सुशोभित एक सरोवर है। उसी सरोवरके निकट मछलियों की क्रीडा देखता हुआ मैं आगे बढ़ रहा था कि पीछेसे किसीने राधाकान्त कहकर मुझे पुकारा। अपना नाम सुनकर मैं चिहुँक पड़ा और साथ ही साथ मुझे स्मरण हो आया कि यह कण्ठ-ध्वनि चिर परिचित हरेन्द्रकी है।

हरेन्द्रकी बोली सुन मेरे आनन्दकी सीमा न रही। दौड़कर मैं उसके निकट गया। मुझे अपने पास देखकर वह आगे बढ़ आया। "अरे! देहाती! तू यहाँ अकेला क्या करता है" कहते हुए उसने मेरे हाथको पकड़ लिया। मेरा गला भर आया। मुझे रोमाञ्च हो आया। आँखोंमें आँसू भर आये और मैं कुछ बोल न सका। मुझे चुप देखकर हरेन्द्रने कहा कि चल मेरे संग चल, आज तुझे मैं अपने घर ले चलूँगा। बिना कुछ कहे सुने, मैं उसके साथ हो लिया। कुछ दूर जानेपर हमलोगोंने एक सुन्दर अटारी में प्रवेश किया। वहाँकी

सजावट देखकर मेरी आँखे तिरमिरा गयीं। मुझे एक बड़े "सोफा" पर बिठाकर हरेन्द्र पास ही बैठ गया। एकटक मैं उसकी ओर देखता रहा और मनमें यही सोचता रहा कि क्या कहकर उसे सम्बोधन करूँ। इतने हीमें मेरे पैरके नीचेकी छत फट गयी और सोफा समेत मैं एक घोर अन्ध-कूपमें आ गिरा।

साथ ही साथ मेरी नींद टूट गयी। आँखें खुल गयीं। ज्ञात हुआ कि देह थरथरा रही है। कलेजा धड़क रहा है; कुछ देरके बाद जब चित्त स्थिर हुआ तब सोचने लगा कि यह मैंने क्या देखा। आज ऐसे सपनेकी सृष्टि मेरे मनमें क्यों हुई? इधर उधर की बातों पर बहुत देर तक पड़े पड़े सोच विचार कर, मैंने स्थिर किया कि हरेन्द्र के विषय में अधिक चिन्ता करते रहने से मैंने यह स्वप्न देखा। और इसका कुछ विशेष अर्थ नहीं है।

बिछौने से उठकर मैंने झरोखा खोला। पूर्व दिशामें कुछ प्रकाश हो आया था किन्तु अभी तक आकाश बादलों से ढँका था। सामनेकी छत और छप्पर पानी से तर थे। वृष्टि थम्ह गयी थी। किन्तु रह रहकर बूँदें ओरियों से टपक पड़ती थीं। एक बार ज़ोर से हवा चली। सामने का निम्ब वृक्ष हिल गया। टपटप शब्द करता हुआ पत्तों से झरझरा कर पानी

गिरा, ज्ञात हुआ फिर भी वर्षा होने लगी। चारों ओर शान्ति राज्य कर रही थी। अभी तक इस बृहत् नगरमें भी कोई उठा नहीं था। सामने से पपीहा ने अपना रव एक बार सुनाया। मेरे मनमें आनन्दका सञ्चार हुआ।

किवाड़ बन्द कर मैं फिर सो गया।

तीसरा परिच्छेद।

आज शनिवार है। आज ऑफिस एक ही बजे दिनको बन्द हो गया। काम परसे आते समय मैंने देखा कि "एलफिंस्टन" नाटकमण्डलीका विज्ञापन बँट रहा है। नोटिस लेकर देखा कि आज "क़त्ले नज़ीर" का अभिनय होगा। मैं बहुत दिनोंसे इसी नगरमें रहता हूँ; किन्तु एक दो बारसे अधिक मैंने नाटक नहीं देखा। अभी तक जब कभी जाता था तो 'स्टार' थियेटरमें। आज मेरी इच्छा हुई कि "पारसी" थियेटर का भी अभिनय देख आऊँ।

नियत समयपर मैं रङ्गशालाके पास पहुँचा और आठ आनेका टिकट खरीद कर फाटक पर इधर से उधर घूमता हुआ लोगोंको देखने लगा। अभी तक नाटकशाला का द्वार खुला नहीं था। सामने बेण्ड बाजा बज रहा था। चारों ओर हलचल मच रही थी। कोई आता था, कोई जाता था। गाड़ी और टमटमों की भीड़ लग रही थी। कितने लोग "ट्रेम-कार" से उतर उतर कर आ रहे थे। सबके मुँह से यही सुनता था कि आज "स्टेज" पर "रेल" गाड़ी लायी जायगी।

इसी समय हरेन्द्र की गाड़ी फाटक पर आ लगी। देख कर मैं एक ओर हट गया। बिजलीकी रोशनी हो रही थी। चारों ओर दिन का सा उजाला फैल रहा था। उतरते समय हरेन्द्रकी दृष्टि मुझपर पड़ी। मुझे देख कर वह आगे बढ़ा और मेरे कन्धे पर हाथ धर कर बड़े स्नेहसे अपने पूर्वपरिचित स्वरसे बोला, "क्यों रे राधाकान्त! क्या नाटक देखने आया है?" मेरे सरमें चक्कर आ गया। मुझे ज्ञात नहीं हुआ कि सोता हूँ वा जागता, आनन्दका स्रोत मेरे हृदयमें फूट चला। मुझे जान नहीं पड़ा कि मैं स्वर्ग में हूँ वा मर्त्यलोकमें। मेरे मुँहसे बोली न निकली। मुझे चुप देखकर हरेन्द्रने कहा,—"क्यों, चुप क्यों है? बोलता क्यों नहीं?" मैं उत्तर न दे सका। उसने कहा, "चल मेरे साथ चल", ऐसा कह कर मुझे अपने साथ ले गया। उसे देखकर द्वारपालोंने झुक झुक कर सलामें कीं। मैनेजर (नट) निकट आकर पीछे पीछे चला और "बॉक्स" खोल कर उसमें हमलोगों को बैठनेके लिये अनुरोध किया। थियेटर में तमाकू और चुरुट पीना मना है किन्तु हरेन्द्रने सुन्दर 'सीगारकेस' से बहुमूल्य चुरुट निकाल कर एक मुझे दिया और स्वयम् एक लेकर, चाँदीके केस से मोमकी दियासलाई निकाल कर जलायी और मुझे भी चुरुटके जलाने

में उसने सहायता दी। मैं अवाक् था। एक सु-
न्दर शीशी निकाल कर सुगन्ध द्रव्य हरेन्द्रने मुझ पर
छिड़क दिया। चारों ओर सौरभ फैल गया। मेरे
मनमें आया कि जो कहानी मैंने "सहस्र रजनी चरित्र"
में पढ़ी थी आज वही देखता हूँ कि मुझ पर बीत रही
है। मै ठीक नहीं कर सका कि थियेटर देखूँ वा
हरेन्द्र को। ड्रॉपसिन—जवनिका—गिरी हुई थी।
आग्रह कर मैनेजर हरेन्द्र को "ग्रीनरूम" (शृङ्गार-
भवन)में ले गया। मै भी साथ गया। वहाँ मैं ने
देखा कि सब पात्र हरेन्द्र को पहचानते हैं। सबके
सब उसकी ख़ातिर करने लगे। हरेन्द्र के पास बहुत सी
फूलोंकी मालायें थीं। उसने उन्हें पात्रोंको दिया, सब
ने धन्यवाद देकर उन्हें अङ्गीकार किया। कहीं
कोई खल्ली अपने चेहरे पर पोत रहा था, कोई कि-
सीके कपोलों पर रङ्ग भर रहा था, कोई नक़ली बाल
पहन रहा था, पुरुष स्त्रीके रूपको धारण कर रहे थे,
रङ्क राजाका साज सज रहा था। स्त्रियाँ भी लज्जा
छोड़ कर अपना भेष परिवर्त्तन कर रही थीं। उनके
निकट भी हरेन्द्रका यथेष्ट आदर सत्कार हुआ। कहीं
तबले पर थाप दे कर तबलची सुर ठीक कर रहा था।
कहीं सारङ्गी की खूँटियाँ ऐंठी जा रही थीं, कहीं हार-
मोनियम में सुर भरा जा रहा था। कोई रङ्गशाला

पर रौशनी करता था और कोई वहाँ सामान ठीक करता था। कहीं कोई खूँटी गाड़ता था और कोई तार बाँधता था।

देखते देखते घण्टी बजी। हम लोग बाहर आये। जवनिका उठी। अभिनय आरम्भ हुआ। गुलाम दस्त-गीर अपनी भगिनी के सङ्ग इश्क का दम भरता नजर आया। दर्शक-मण्डलीने ताली-ध्वनि की। सबके आनन पर हर्षका चिन्ह दीख पड़ा। आज तक मुझे ऐसा दृश्य देखने का अवसर नहीं आया था। मेरे अन्त:करण में विषाद ने अपना घर किया।

मनही मन मैं सोचने लगा कि हाय! मेरे देशकी यह क्या दशा हो रही है! हाय! कालिदास की स-न्तान आज ऐसा निन्दनीय अभिनय देखकर आनन्द प्रकाश कर रही है! व्यर्थ भारतेन्दु ने उत्तमोत्तम नाटकों की रचना की। श्रीनिवास का भी परिश्रम निष्फल हो गया। जिस देशके लोगों में ऐसे नाटक का इतना आदर हो रहा है, वह देश क्या सभ्य समाज में कोई उच्च आसन ग्रहण कर सकता है? यदि किसी सभ्य देशकी नाटकशाला में यह अभिनय दिखाया जाता; तो मुझे निश्चय है कि एक दर्शक का भी वहाँ दर्शन न होता। क्योंकर लोग कहते हैं कि हम-लोगों का देश उन्नति के पथ पर अग्रसर हो रहा है?

क्योंकर लोग कहते हैं कि यहाँ विद्याका प्रचार हो रहा है ? क्योंकर अब भारतवासी कहते हैं कि हमलोग आर्य्य ऋषियोंकी सन्तान है ? हाय ! हाय ! आज इसी अभिनय को लेकर नगर में इतना आन्दोलन था। सब के सब कहते थे कि इस अभिनय का आधार एक यथार्थ घटना है। लोग कहते थे कि यह एक सामाजिक नाटक है। क्या आज इसीको यहांके लोग अभिनय-योग्य नाटक समझते हैं ? क्या इसे देख कर हम लोगोंको कोई लाभ पहुँच सकता है ? क्या इससे लोगोंको किसी प्रकारकी शिक्षा मिल सकती है ? क्या इसे देखने से चित्तरञ्जिनी शक्तिको धक्का नहीं लगेगा ? इसे देखनेसे क्या हमलोगोंकी रुचि नहीं बिगड़ेगी, हम भ्रष्ट और पापी नहीं होंगे ? क्या देश में अविद्या के फैलने का यह एक स्वतः प्रमाण नहीं है कि ऐसे दूषित अभिनय को देखने के लिये लोग दौड़े आ रहे है ? लोगों को कहते सुना है कि इस में दोष केवल नाटकवालों ही का है, किन्तु मेरी समझ में बात ऐसी नहीं है। यदि हम लोग ऐसे बुरे नाटकों को देखने नहीं आते, तो ये लोग इसका अभिनय क्यों करते ? हम लोगों ही का दोष है कि, ऐसे विषयों को पढ़ने सुनने और देखने का हम लोग कष्ट नहीं उठाते, जिन में माया खर्चना पड़ता है।

यह बात नहीं है कि देश में अच्छे नाटकों का पूर्ण अभाव ही है, किन्तु उन्हें कोई पूछता नहीं। और आदर न पाने के कारण ही आधुनिक सुलेखक भी उस ओर ध्यान नहीं देते। केवल नाटक ही के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती; इधर उपन्यासों की भी तो यही दशा है। उत्तम प्रबन्धों का आज कौन आदर करता है ? किन्तु वे लेखक भी इस अपराध के भागी अवश्य हैं जो अपनी रचना के द्वारा अपने पाठकों और दर्शकों को इस कुमार्ग पर चलने में सहायता देते हैं। उन लोगों को समझना चाहिये कि भगवान ने उन लोगों को सर्वसाधारण से अधिक प्रतिभा और शक्ति दी है और उन लोगों का धर्म है कि अपने से नीची श्रेणीवालों का ऊपर लावें, न कि उन्हें सन्तुष्ट करने के लिये अपनी प्रतिभा को नीचे ले जायँ।

मैं इसी सोच विचार में था कि एक पात्र को फाँसी की आज्ञा प्रचार हुई। देखते देखते रङ्गशालापर उसको फाँसी हुई। मेरे रोंगटे खड़े हो गये। आज तक मैंने किसी स्टेज पर यह लीला नहीं देखी थी। अभिनय के नियम के विरुद्ध यह बात अवश्य है।

मैं इन्हीं सब बातों की मन ही मन आलोचना कर रहा था कि हरेन्द्र ने कहा, "चल, अब यहाँ क्या कर रहा है ? इच्छा हो तो फिर कभी मेरे सङ्ग आना।"

मैं उठ खड़ा हुआ। उसने कहा कि आज तुझे घर नहीं जाना होगा। आज मेरे यहाँ तुझे चलना होगा। नहीं तो कह मैं तेरे साथ तेरे डेरे पर चलूँ।

इस बार मेरा कण्ठ खुला। मैंने कहा,—"आप मेरे डेरे पर नहीं चल सकते। मेरा अपना डेरा नहीं है। मैं एक बोर्डिङ्ग में रहता हूँ।"

"अच्छा उस की चिन्ता मत कर। मेरे साथ चल।" हम लोग बाहर आये। थियेटर के द्वार पर गाड़ी खड़ी थी। घोड़े व्यस्त खुरों से पृथ्वी खोद रहे थे और अपनी लगाम को काट रहे थे। अपने स्वामी को देख कर वे हिनहिनाने लगे। हम लोग गाड़ी पर जा बैठे। गाड़ी तीर-वेग से निकल चली।
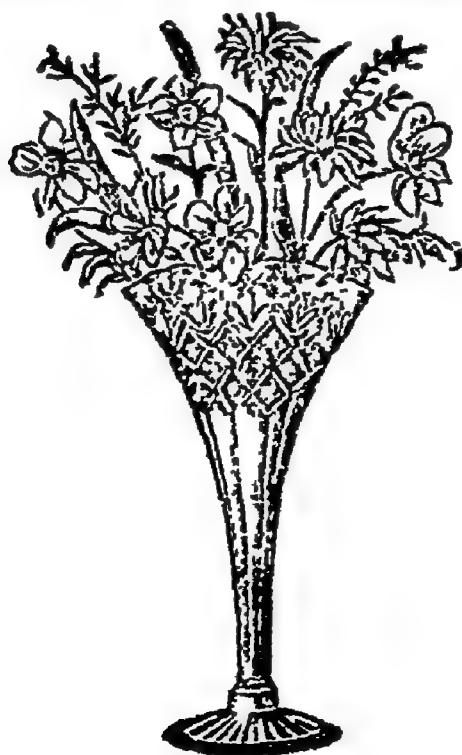
चौथा परिच्छेद।

हरेन्द्रके साथ उसके घर पर पहुँच कर मैं ने देखा कि वह इन्द्रालय है। फाटक पर दरवान बैठा था। गाड़ीके पहुँचतेही उसने फाटक खोला, हम लोग भीतर पहुँचे। 'अहाते' के भीतर सुन्दर भूमि बनी हुई थी जिस पर हरी दूब का फ़र्श था। चारों ओर गैस की रौशनी हो रही थी। सामने दो-महला महल था। खिड़कियाँ सुन्दर परदोंसे सुशोभित थीं। सीढ़ियों से हो कर हम लोग ऊपर बैठकमें घुसे। ज़मीन पर सुन्दर क़ालीन बिछा देख कर मैं जूता उतारने लगा। हरेन्द्र ने कहा—"यह क्या करता है? जूता खोलना नहीं होगा। चल चल, आगे बढ़।" मेरे पैरों के नीचे ज्ञात हुआ गुलाबों का दलका दिया हुआ है। मुझे "विक्टोरिया" कॉच पर बिठा कर हरेन्द्र पास ही बैठ गया। उस दिन का मेरा स्वप्न आज फलीभूत हुआ। मुझे जान पड़ा कि आज मैं इन्द्रलोक में पहुँच गया। गुलाब-जल से तर किये हुए "फतह पेंच" पर अङ्गूरी तम्बाकू भरा हुआ रूपे का चिलम धर कर एक शुभ्र परिच्छदधारी ख़ानसामा ने एक गुड़गुड़ी ला रखी। उस की सुगन्ध से मेरा माथा भर गया।

सामने एक जयपुरी सङ्गमरमर के "टेबुल" पर पुष्पदान में सुगन्धित सुमन रखे थे। दीवालों में "गैस" के गिलास जड़े थे। दीवालों की चमक देख कर मेरी आँखों में चकाचौंध छा गयी। मैंने ऐसी शोभा कभी नहीं देखी थी। पीछे ज्ञात हुआ कि चारों ओर दीवालों में "चाइना प्लेट" जड़े हुए थे, जिन में नाना प्रकार के सुन्दर रङ्गीन चित्र बने हुए थे। देखा कि हर ओर दीवालों पर राजा रविवर्म्मा के अङ्कित बड़े बड़े अनेक चित्र लटक रहे हैं। उन में "शकुन्तला का पत्र लिखना", "मोहिनी का झूला", "गङ्गा अवतरण" देख कर मैं चुप हो गया। धन्य वह चित्रकार था जिस ने कविता को इस प्रकार चित्रों में अङ्कित कर दिया है।

मुझे दीवालों पर दृष्टि गड़ा कर देखते हुए देख कर, हरेन्द्र ने कहा कि राधाकान्त! मेरे कमरे में तेरा भी चित्र है। चल, उसे देख आ। हम दोनों दूसरे कमरे में गये। देखा कि दीवाल पर हर ओर हम दोनों की मूर्त्ति अङ्कित है। हर ओर अपनी अनन्त चित्र देख कर मैं चकित हो गया। मुझे अकच-काया हुआ देख कर हरेन्द्र बोला "क्यों! तू आश्चर्य में क्यों आ गया! तू समझता नहीं कि यह कौन सा इन्द्रजाल है! आ, इधर आ तुझे दिखाता हूँ।

चारों ओर दीवालों पर और छत पर आईने जड़े हुए हैं उन्हीं में तेरा चित्र देख पड़ता है। इसी को शीश-महल कहते हैं। चल, अब सदर दालान में बैठें। किसी दूसरे दिन और सब चीजों को दिखाऊँगा।"

फिर आकर हम लोग उसी कौच पर जा बैठे। चाँदीके तबक मढ़े सुन्दर स्वादिष्ट पानों की खिल्लियाँ और पुष्ट उत्तम इलायचियाँ एक सोने के तश्त में ला कर एक भृत्य ने एक चाँदी की तिपाई पर रख दीं। अपने मालिक की आज्ञा पा नौकर एक सोने के गिलास में बर्फ़ देकर शर्बत ले आया। मेरे हाथ में एक गिलास देकर हरेन्द्र ने कहा, "राधाकान्त! ले एक गिलास शर्बत तू भी पीले। प्यास लगी होगी। एक घूँट पी कर मैंने अनुमान किया कि यही अमृत है, जन्म भर मैंने ऐसी वस्तु पान नहीं की थी।

कुछ देर तक इधर उधर की बातें होती रहीं। फिर हरेन्द्र ने पूछा, "कैसे दिन काटते हैं? क्या कहता है, तेरा विवाह हुआ है वा नहीं? इत्यादि इत्यादि" संक्षेप में अपनी कहानी उसे मैंने कह सुनाई। सुन कर वह सन्तुष्ट हुआ अथवा नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। किन्तु यह अवश्य कहूँगा कि मेरी वर्त्तमान जीवनी वह ध्यानपूर्वक सुन रहा था।

किन्तु हरेन्द्र के साथ वार्त्तालाप करते समय मेरा

चित्त स्थिर नहीं था। मेरा मन एकाग्र नहीं होता था। कभी मेरा मन उस के कमरे की सजावट की ओर जाता, कभी चित्त चित्रों की ओर आकर्षित होता, कभी शीश-महल का ध्यान हो आता और कभी अपने स्वप्न की बात हृदय में उदय होती।

मुझे साहस यह पूछने का नहीं हुआ कि, हरेन्द्र कैसे रहता है और अपने जीवन को किस काम में बिताता है। इस के पहले ही मैंने सिद्ध कर लिया था कि उस का जन्म सुख भोगने के लिये हुआ है और मेरा परिश्रम करने के लिये। सच्ची बात कहने में सङ्कोच ही क्या है? एक बार मेरे मन में यह बात आयी थी कि, जो कहीं हरेन्द्र मुझे कुछ द्रव्य दे दे तो मैं भी पृथ्वी का सुख भोग करूँ। किन्तु इस बात को बहुत देर तक मैंने अपने मन में ठहरने नहीं दिया।

कुछ देर के बाद एक नौकर को बुला कर हरेन्द्र ने कहा,—"बाबू को गाड़ी पर चढ़ा कर इन के डेरे पर पहुँचा आ।"

हुक्म की देर थी। गाड़ी नीचे के मैदान में आ लगी। हरेन्द्र से विदा होकर मैं अपनी झोंपड़ी की ओर चला। हरेन्द्र के महल की तुलना में मेरा निवास-स्थान एक झोंपड़ी ही मात्र था। चलते समय हरेन्द्र ने मुझ से कुछ कहा नहीं। घर पर गाड़ी ले जाते मुझे

सङ्कोच हुआ। राह ही में मैं गाड़ी से उतर गया। गाड़ी फिर गयी और पैदल मैं अपने डेरे की ओर चला। पीछे पीछे साईस भी मेरे डेरे तक आया; किन्तु उस समय यह बात मुझ पर विदित नहीं हुई। मेरा डेरा देख कर साईस लौट गया। भीतर जा कर मैं बिछौने पर पड़ गया।

और दिन सेज पर पीठ देते ही मुझे नींद धर दबाती थी, किन्तु आज ऐसा नहीं हुआ। चेष्टा करने पर भी बहुत देर तक मुझे नींद नहीं आयी। नाना प्रकार की चिन्ताओं से मेरा मन चञ्चल हो रहा था।

जिस हरेन्द्रके निकट पहुँचनेके लिये मैं सदा व्याकुल रहता था, आज उस ने आदर से मुझे अपने पास बिठाया। पथ के भिखारी को उस ने राजसिंहा-सन पर प्रतिष्ठित किया। कुटीनिवासी को उस ने राज-महल में प्रवेश करने दिया। "बेञ्च" के बैठनेवाले को उस ने "बॉक्स" पर आसन दिया। मैं समझ गया कि मैं उस रातको स्वप्न नहीं देखता था, वरन् निद्रा-देवी भविष्य के पर्दे को मेरी आँखोंके सामने से हटा रही थी।

इसी बीच मेरा ध्यान हरेन्द्र के बैठके की ओर फिर गया। आप ही आप मैं कहने लगा कि कवि एवम् शास्त्रकार स्वर्ग की बात व्यर्थ ही लिखते हैं।

यह कहना भूल ही है कि मरने पर मनुष्य स्वर्ग में जाता है। किन्तु स्वर्ग मिथ्या नहीं है, इन्द्रपुरी की सत्यता में सन्देह नहीं। यह कवियों की कल्पना मात्र है, यह नहीं कह सकता। दूसरा जो कहे, किन्तु मैं तो प्रत्यक्ष ही आज स्वर्गपुरी देख आया। सम्पत्ति में, विभव में- सजावट में, सुन्दरता में, भोग में, सुख में क्या हरेन्द्र का महल, उस की वह वृहत् अट्टालिका, उसका शीश-महल और बैठका क्या स्वर्ग से कम है? क्या देवतुल्य सुख हरेन्द्र भोग नहीं रहा है? सुनता हूँ कि स्वर्गनिवासी आमोद प्रमोद ही में अपना समय बिताते हैं, उन्हें कोई काम नहीं करना पड़ता। उन्हें किसी बातकी चिन्ता नहीं रहती, तो क्या हरेन्द्र को कुछ काम करना पड़ता है? क्या उसे किसी बात की कोई चिन्ता है? तब फिर यह क्यों न समझूँ कि हरेन्द्र स्वर्ग-सुख भोग रहा है। किन्तु आज मैं भी तो सशरीर स्वर्ग में घूम आया। वहाँके सुखका अनुभव कर आया।

किन्तु एक बार जानेसे क्या हुआ? एक बार वहाँका जाना तो मेरे लिये अच्छा नहीं हुआ। मुझे अब यहाँ रहते और अधिक कष्ट एवम् दुःख होगा। जिस वस्तुके स्वाद को मनुष्य नहीं जानता, उसके लिये तो वह कभी व्याकुल नहीं होता, जिसे हम लोगोंने नहीं देखा

है उसे फिर देखनेके लिये तो हम लोग नहीं मरते। नहीं पाना एक बात है और पाकर खोना तो और ही बात है। नहीं पानेमें उतना दुःख नहीं है जितना पाकर खोनेमें। जैसा कालीन मुझे सोनेको कभी नहीं मिला, वैसे पर आज जूता धर आया हूँ। जिस हरेन्द्र की छाया छूनेको तरसता था आज उसके साथ एक आसन पर बैठ आया हूँ। अब क्या इस सुख को मैं कभी भूल सकता हूँ, और भूले बिना क्या मुझे शान्ति मिल सकती है? मेरा दुःख-पूर्ण जीवन आज और भी दुःखी हो गया।

इसी सोच विचार में, मैं बिछौने पर करवटें बदल रहा था कि कहींसे पपीहे का शब्द सुन पडा, शरीरमें ठण्डी हवा लगी, ज्ञात हुआ कि भोर हो चला है। इधर ठण्डक पहुँचने से मन कुछ स्थिर हुआ। देखते देखते आँखें झिपने लगीं और थोडी देरमें मै बेसुध सो गया। लोक परलोककी चिन्ता जाती रही। मुझमें और हरेन्द्र में कुछ भेद नहीं रह गया। नींद की गोद में राजा रङ्क, ज्ञानी मूढ़, पण्डित मूर्ख सब समान ही हैं। चिन्ता शोक और क्लेश की एक मात्र औषधि, बस यही नींद है। यह हम लोगोंके प्राणोंमें नये जीवनका सञ्चार करती है। दयालु प्रकृतिका यह अलौकिक और अद्भुत दान है। भगवान् न करें, कोई इसके सहवाससे वञ्चित हो।

पांचवां परिच्छेद

दूसरे दिन प्रभात समय शय्या परित्याग करते ही मैंने सुना कि एक चोबदार मुझे खोज रहा है। खिड़कीसे झाँककर देखा कि सुन्दर जोड़ी होटल के दरवाज़े पर खड़ी है। गाड़ीको देखते ही मैंने पहचाना कि यह हरेन्द्र की है।

अरदलीने अभिवादन कर कहा कि सरकार आप से मिलना चाहते हैं, गाड़ी तैयार है, कष्ट न हो तो चलने की कृपा करिये।

"अच्छा," कह कर मैं अपने साधारण कपड़े पहन गाड़ी पर बैठा। गाड़ी बड़े वेगसे आगे बढ़ी।

कुछ दिन चढ़ आया था। बाल रवि की किरणें चारों ओर फैल रही थीं। सड़क पर लोग इधर उधर आ जा रहे थे। दूकानें खुल चुकी थीं। राहमें जाते समय अनेक परिचित लोगोंको मैंने देखा। कितने मुझे इस अवस्थामें पहचान न सके। कितने आश्चर्य्य से मेरी ओर देखते रह गये। कितनों ने हाथके इशारे से कुछ पूछना चाहा। मैं अपनी अवस्था पर, अपनी अवस्था इस प्रकार एकाएक परिवर्त्तन हो जाने पर, आप

आश्चर्य्य में था। अपनी अवस्था की सत्यता पर कभी कभी मुझे स्वयम् सन्देह भी हो जाता था। हाय! जिस गाड़ीके निकट पहुँचते मुझे भय होता था, जिसे निकट आते देख कर मैं भयसे एक ओर सिमट कर खड़ा हो जाता था, आज उसी गाड़ीपर मैं स्वयम् बैठा हूँ। जिनके भयसे मैं हरेन्द्र के निकट पहुँच नहीं सकता था, आज वेही मुझे अभिवादन करते हैं। कालकी गति निराली है। सच है, प्रारब्ध को कौन जान सकता है?

देखते देखते गाड़ी हरेन्द्र के फाटक पर पहुँच गई। इस समय उसके घरकी शोभा कुछ और ही थी। आज घर कहता हूँ किन्तु उस समय मुझे ज्ञात हुआ कि यह कोई राज-महल है। ऊँची अटारी सुबह की सुनहरी धूपमें चमचमा रही थी। चार फाटकों और अहातोंको पार कर, मैं उसके अन्तःपुरमें पहुँचा। पहले अहातेमें चारों ओर कोठरियाँ नौकरों के रहने को बनी हुई थीं। दूसरे अहाते में ज़मीन्दारी सरिश्ता था, चारों ओर अमलों के बैठने को जगह और एक कचहरी थी। तीसरे अहाते में प्रवेश करते ही मैंने देखा कि सामने एक कोमल हरी हरी घास का चौक बना है। उस के चारों ओर सुरखी से पीटी हुई सड़क, चारों कोनों पर ऊँचे ऊँचे, सुन्दर बिजली की रौशनी के लिये,

खम्भे गड़े हैं, जिन से बिल्लौरी शीशे की झुण्डी लटक रही है। एक ओर दोमहल्ल की कोठियाँ बनी है, जिन में कोई पुस्तकालय, कोई शास्त्रालय, कोई नाट्य तथा नृत्यशाला, कोई रङ्गमहल और कोई शीश-महल हैं। रात में मुझे ज्ञात नहीं हुआ था। किन्तु यहीं रङ्ग एवम् शीश-महल की शोभा हरेन्द्र ने मुझे दिखाई थी। इस अट्टालि के सामने एक ओर फाटक था उस में जानेपर मैंने देखा कि यह एक सुन्दर एवम् मनोहर पुष्पोद्यान है जिस में विविध प्रकार की क्यारियाँ बनी हुई हैं और जिनमें नाना प्रकारके पुष्प-विटप, द्रुम, गुल्म-लतादि शोभा पा रही है। एक ओर एक सुन्दर तालाब और सामने पत्थरका बना हुआ एक अत्यन्त सुन्दर देव-मन्दिर था। पास ही एक नकली पहाड़ी और झरना था। एक ओर "ग्रीनहाउस" देखा जिसमें सब्ज़ीकी छायामें कितने फूल पौधे लगे हुए थे।

इन सबको देखकर मैं अन्तःपुरमें गया। आज मुझे कही रोक टोक नहीं है। जो सामने पड़ता है वही सादर अभिवादन करता है। मुझे ज्ञात होता था कि वे सब मेरे कपड़ों की ओर आँखें गड़ा गड़ा कर देख रहे हैं। कभी कभी मैं मन ही मन लज्जित भी हो जाता था। किन्तु देखनेको इतनी चीज़ें थीं कि, इच्छा करनेपर भी मेरा ध्यान अधिक देरतक इस ओर नहीं ठहर सकता था।

अन्तःपुर में प्रवेश कर सुन्दर सँगमरमर की सीढ़ियों से मैं कोठेपर चढ़ा। वहाँ देखा कि मरमर और मूसा पत्थर का साफ़ सुथरा फ़र्श बिछा हुआ है। शीशे जड़े हुए अँगरेज़ी किवाड़ हैं। दीवारों से तस्वीरें लटक रही हैं, चारों ओर के सायबान चित्रित फूल बूटे बने हुए मरमर के खम्भों के सहारे खड़े हैं। नौकर ने मुझे इशारा किया। मैं एक कमरे में घुसा। वहाँ देखा कि एक कोमल स्वच्छ शय्या पर हरेन्द्र अभी तक लेटा हुआ सुगन्धित तमाकू पी रहा है। मुझे बैठने को उस ने कहा, और मैं उस के पास बैठ गया, क्योंकि यहाँ कुरसी अथवा कौंच नहीं था।

कुछ देर के बाद हरेन्द्र ने कहा कि चल स्नान कर आवें।

मुझे ज्ञात हुआ कि जिस तड़ाग को मैं देख आया हूँ उसी में स्नान करना होगा। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। मुझे साथ लेकर वह एक कमरे में गया। वहाँ सुवासित जल से पूर्ण "टब" रखे हुए थे। पास ही एक चौकी पर सुगन्धित तैल तथा साबुन रखा था। अरगनी पर चुनी हुई सुन्दर शान्तीपुरी धोती, तौलिया और अँगोछे रखे हुए थे। सँगमरमर की दो चौकियों के ऊपर पानी के नल थे। बीच में एक छोटा सा हौज़ था, जिस में गरम जल भरा हुआ था। यहाँ

का सामान देख कर मैं विस्मित हो गया। दो नौकरों ने आकर हम लोगों को स्नान कराया।

मेरा भेष परिवर्त्तन हुआ। सुन्दर धोती, सुन्दर क़मीज़ और एक सुन्दर कारपेट का पम्प जूता पहर कर मैं बाहर आया। दूसरे कमरे में जलपान के लिये सोने की थाली में नाना प्रकार के मधुर स्वादिष्ट पदार्थ रखे थे और सोने के गिलास में सुगन्धित जल था। आज तक ऐसे पदार्थों के खाने का मुझे सौभाग्य नहीं हुआ था। नाना प्रकार के मिष्टान्न, फल तथा अन्न को खाकर मैं सन्तुष्ट हुआ।

इसी में दस बज गये। ऑफिस जाने के लिये मैं व्यस्त हो रहा था। किन्तु किसी प्रकार हरेन्द्र ने मुझे जाने नहीं दिया। मैंने कहा कि नहीं जाने से बड़ी हानि होगी, हो सकता है कि मेरा काम भी छुट जाय। हरेन्द्रने कहा कि अब ऑफिस जाना नहीं होगा। अब तू नौकरी न कर। नौकरी में क्या धरा है? तू आज मत जा। आज तुझे यहीं खाना होगा। मैं बारह बजे खाता हूँ।

सन्न गया, मुझे ज्ञात होने लगा कि यहाँ आज आकर मैंने अच्छा नहीं किया। ऐसा ही होता तो किसी तातील के दिन आता। किन्तु क्या करता? आगे कुछ कह भी नहीं सका।

भोजन भी उसी तैयारी से हुआ। भोजन के बाद आकर देखा तो हरेन्द्र के पास एक दूसरा पलँग उसी सजावट का मेरे लिये भी बिछा हुआ है। हम दोनों अपने अपने पलँग पर लेट गये। थोड़ी देर तक इधर उधर की बातें होती रहीं। फिर हम लोग सो गये। निद्रा भङ्ग होनेपर, हरेन्द्र ने कहा कि अब तू अपने डेरे पर मत जा। तेरा हिसाब मैंने चुका दिया है। मेरे इस घर के सामने एक बैठका है उसी में तेरा डेरा रहेगा। अपने काम पर भी अब तुझे नहीं जाना होगा। अपने ख़र्च के लिये यह रुपया ले, तेरा सब सामान ठीक कर दिया गया है। अब अपने डेरे में जाकर तू रह। जब तेरी इच्छा हो तब यहाँ आना और काम पड़ने पर मैं भी तुझे बुला लूँगा अथवा वहीं जाकर तुझ से भेंट करूँगा; जितनी इच्छा हो ख़र्च करना मैं और रुपया दूँगा।

ऐसा कह कर उस ने मेरे हाथ में दस दस रुपये के पाँच सौ के नोट दिये। जन्म भर में, मैंने इतना रुपया एक साथ इकट्ठा नहीं देखा था, मुझे कौन कहे मेरे बाप ने भी नहीं देखा होगा।

मैंने सोचा कि यह क्या स्वर्ग देख रहा हूँ, क्या कल्पतरु की छाया में बैठा हूँ? लक्ष्मी की अचानक ऐसी कृपादृष्टि मुझ पर कैसे हुई? क्या कोई स्वप्न में

भी ऐसा सोच सकता था? संसार में तो इतने लोग हैं किन्तु कमला की कृपा मुझी पर क्यों हुई? अचानक मैं ऐसे पद पर कैसे पहुँच गया! अहा! देखता हूँ कि धन-जनित सब सुखोंको अब मैं स्वच्छन्द भोग सकूँगा। हरेन्द्र को जो मैं देवता समझा था, वह मेरे लिये यथार्थ ही देवता निकला। मुझे श्री कृष्ण और सुदामा की कथा याद आ गयी। मैं अपने मनके आवेगको रोक न सका। मेरे नेत्रों से जल निकल पड़ा।

छठा परिच्छेद।

अब मेरे दिन बड़े सुख से कट रहे हैं। आज हरेन्द्रमें और मुझ में कोई अन्तर नहीं है। जिस ठाट बाट से वह रहता था आज मैं भी रहता हूँ। वैसी ही गाड़ी जोड़ी, मकान की सजावट और भेष भूषा है। प्रायः हम दोनों साथ ही वायु सेवन वा मेले तमाशे में निकलते थे। अब बहुत लोग यह समझने लगे थे कि हम लोग भाई अथवा कोई निकट-सम्बन्धी हैं।

आज मेरे मकान पर लोगों की भीड़ लगी रहती है। जो लोग पहले मुझ से बोलना तक पसन्द नहीं

करते थे, वे लोग आज मेरा मुँह जोहते हैं। इस बीच कितने बड़े बड़े सम्बन्धियों के यहाँ से मुझे पत्र आने लगे। पहले जो लोग मुझ से पत्र-व्यवहार रखने अथवा मिलने जुलने में अपनी मान-हानि समझते थे, वे लोग भी आज मुझसे स्नेहका बर्त्ताव करने लगे।

हाय! धन का भी प्रभाव धन्य है। इस के द्वारा मनुष्य को संसार में क्या नहीं मिल सकता? मान, बड़ाई, संसारीसुख ये सब तो धनवानों के हाथ के मैल हैं। कितने लोगों की यह भी धारणा है कि पुण्य तथा धर्म भी धन द्वारा हस्तगत हो सकता है।

दिनोंदिन हरेन्द्र की प्रीति मेरी ओर गाढ़ी होती गयी। असङ्कुचित भाव से, मैं उसका धन अपने सुख के लिये व्यय करने लगा। अब मैं भूल गया कि मैं एक दरिद्र किसान हूँ।

हरेन्द्रके परिवार का अब मुझे पूरा परिचय लग गया। मुझे ज्ञात हुआ कि हरेन्द्रके माता और एक भगिनी है। भगिनीका विवाह हो गया है। वह अपनी माताके सङ्ग एक दूसरे मकानमें रहती है। हरेन्द्रका बहनोई भी वहीं रहता है। हरेन्द्रका अपनी अपनी माता से मेल नहीं है। सम्पत्तिके लिये दोनोंमें सदा लड़ाई हुआ करती है। हरेन्द्र का बह-नोई अपनी सास को सदा उसके विरुद्ध उत्तेजित किया

करता है। दो चार मास के लगभग हुआ कि, हरेन्द्र को पत्नी-वियोग हो गया। अब उसकी इच्छा व्याह करने की नहीं है। हम लोग बहुत कहते सुनते हैं, किन्तु वह व्याह करने पर राज़ी नहीं होता। सुना है कि,हरेन्द्रका अपनी पत्नीसे भी सदा मनमुटाव ही रहता था। अतएव वह सदा अपने पीहर ही मे रहती थी।

पत्नी-वियोग होनेपर प्रायः लोग पुनः विवाह करने पर राज़ी नहीं होते। इसके तीन कारण हरेन्द्रसे तर्क वितर्क करते मुझे ज्ञात हुए। प्रथम यह कि, यदि कहीं दुर्भाग्यवश प्रथम पत्नी क्रूर स्वभाव की मिली तो उसके व्यवहार से मनुष्य परिवारके सुखोंसे विरक्त हो जाता है, फिर उसे यह इच्छा नहीं रह जाती कि वह शादी करे; क्योंकि वह समझने लगता है कि, संसार भरकी स्त्रियाँ ऐसी ही दुष्ट स्वभाव की है। और बात भी ऐसी ही है,क्योंकि संसारमे इस से बढकर कोई दूसरा दुःख नहीं है कि,सहधर्मिणी दुष्टा मिले। दुष्टा स्त्रीके सङ्ग रहनेसे सोनेके संसार में भी मनुष्यको नरक की यन्त्रणा ही भोगनी पड़ती है। मनुष्य और सब दुःखों को तो किसी प्रकार सह ही लेता है, किन्तु इस दुःख को सहना तो असम्भव ही हो जाता है। दूसरा कारण यह है कि, प्रथम पत्नीके स्नेहके वशीभूत होकर लोग पुनर्विवाह करना नहीं चाहते। प्रथम पत्नी की

मूर्त्ति हृदय मन्दिर में जागरित रहती है, अतएव स्थानाभाव के कारण वहाँ दूसरी प्रतिमा स्थापन करना कठिन बोध होता है। संसारमें प्रेमका एक सम्बन्ध दो प्रेम-पात्रियों से एक समय रहना कठिन है। यों लोकाचारके अनुसार एक मनुष्य दो विवाह भले ही कर ले, किन्तु दो स्त्रियों के संग समान भाव से वह कदापि स्नेह नहीं कर सकता। व्याह करना एक बात है और अपनी पत्नी के सङ्ग उचित प्रीति करना दूसरी बात है। जब तक प्रथम भार्य्या की प्रीति नहीं घटती, जब तक हृदय पर अङ्कित उस के चित्र का रंग फीका नहीं पड़ता, तब तक इच्छापूर्वक कोई पुनर्विवाह नहीं करता। ऐसे अपने घरवालों के दबाव में पडकर अथवा अपना कर्त्तव्य समझ कर कोई काम कर लेने का हिसाब ही क्या है ? तीसरा कारण दूसरी बार विवाह नहीं करने का यह है कि, विवाहित अवस्था में रहने पर जो दुःख सुख होता है, जितना फ़िक्र और कष्ट होता है, संसार के और और कामों से मन को हटा कर जितना यत्न परिवार के लिये, स्त्री सन्तति के लिये, करना पडता है, इन सब बातोंका मनुष्य को पूरा अनुभव एवम् ज्ञान हो जाता है; अतएव एक बार ऐसे दृढ बन्धन से मुक्ति पाने पर, वह पुनः इस जञ्जाल में पड़ना नहीं चाहता; क्योंकि विचार-दृष्टि से देखने पर ज्ञात

होता है कि सुख से अधिक दुःख की ही मात्रा नारी, पुत्र लेकर गृहस्थी चलानेमें है। जिस का व्याह नहीं होता, जिसकी स्त्री नहीं है वह अधिक स्वतन्त्र, अधिक निश्चिन्त और अधिक परोपकारी होता है। परमार्थ से विमुख करने वाली इससे प्रबल कोई व्याधि नहीं है।

किन्तु कहाँ से कहाँ चला जा रहा हूँ। तात्पर्य्य यह कि हम लोगों के बहुत कहने सुनने पर भी हरेन्द्र ने फिर विवाह नहीं किया। मैंने इस विषय में उस से कहना छोड दिया। मुझे आज काल यह भी ज्ञात होता था कि पहले से कुछ अधिक रासरङ्ग में हरेन्द्र रहता है। स्वच्छन्द वह आमोद प्रमोद में अपना दिन बिता रहा है।

देखते देखते कई मास बीत गये। एक दिन हरेन्द्रने मुझसे कहा,—"राधाकान्त। मैं चाहता हूँ कि चल कर तेरा घर देख आऊँ।" इधर मुझे अपने घर की सुध नहीं थी। इस प्रस्तावको सुन कर मै सहम गया। मुझे चिन्ता हुई कि अपने घर ले जाकर मै हरेन्द्रका क्या आदर सत्कार करूँगा। यहाँ मै हरेन्द्र की कृपासे बाबू बन कर रहता था सही, किन्तु मेरे घर की अवस्था अभी पहली सी ही थी। क्योंकि जो धन मुझे हरेन्द्रसे मिलता था, उसका कोई अँश मैं अपने घर नहीं भेजता था, अपने ही सुखमें मै उसे व्यय

करता था, वरन् नौकरी छुट जानेके कारण मैं नियत सहायता भी अपने घरवालोंको नहीं देता था। किन्तु घर पर गृहस्थी यथेष्ट होती थी, अतएव किसीको वहाँ किसी बातका कष्ट नहीं था।

मेरे बहुत कहने सुनने और निषेध करने पर भी हरेन्द्र न माना। अन्तमें यही निश्चय हुआ कि जल-पथ से मैं हरेन्द्र को लेकर अपने घर जाऊँगा। अपने पिता को इस विषय की सूचना मैंने दे दी।

दिन निकट पहुँचने पर मैंने हरेन्द्र से कहा कि अच्छा अब चलनेकी तैयारी करो। किन्तु उसने उत्तर दिया कि तैयारी किस बातकी। मैं किसी को अपने साथ नहीं ले जाऊँगा। अपनी नौका भी नहीं जायगी। हम लोग दोनों आदमी किराये की नौका पर जायँगे।

मैंने कहा कि तुम्हें कष्ट होगा। कम से कम एक दो नौकर तो साथ ले लो। हरेन्द्रने उत्तर दिया कि तू नहीं जानता, तेरे सङ्ग रहनेमें मुझे बहुत सुख होता है। जब तू साथ रहेगा, तो मुझे कष्ट किस बातका होगा ? जिस प्रकार तू रहेगा मैं भी रहूँगा। बखेड़ा बढ़ानेका काम नहीं है। यदि मेरे नौकर मेरे साथ रहेंगे तो मैं स्वच्छन्द नहीं रह सकूँगा। मेरी इच्छा होती है कि कुछ दिन इन सब बखेड़ोंसे दूर रहूँ। आज कल यहाँ जी नहीं लगता।

अन्तमें हरेन्द्र की ही जीत हुई। एक दिन सन्ध्या समय मैं हरेन्द्रके साथ अपने घरकी ओर चला।

सातवां परिच्छेद।

चाँदनी रातमें हरेन्द्रकी नाव जल-मार्गसे मेरे देशकी ओर जाती थी। कलकल नाद करती हुई जल-तरङ्गें तरणीके चारों ओर बह रहीं थीं। गरगराता हुआ नीर तरणीके सन्मुखसे हट जाता था। जलके सङ्ग दाँडका संयोग होनेसे झप्‌झप् ध्वनि होती थी। नदी-जल पर चन्द्रिका हँस रही थी। आकाशमें नक्षत्रोंके बीच चन्द्र देव हँस रहे थे। दोनों किनारों पर शस्य-पूर्ण क्षेत्र हँस रहे थे। कहीं गाँव दीख पड़ता था, कहीं छोटी छोटी झोंपड़ियाँ दृष्टिगोचर होती थीं, कहीं घाससे सुशोभित मैदानकी हरियाली देखकर चित्त विकसित हो जाता था। किन्तु सबकी सब निद्रितावस्थामें थीं। कहीं कोई शब्द सुनाई नहीं देता था। हर ओर शान्ति राज्य कर रही थी। किसी में कुछ सजीवताका चिन्ह नहीं था। केवल रह रह कर

कहींसे कुत्तोंके भूँकनेका शब्द अथवा शृगाल तथा उलूक का कर्कश स्वर सुनाई देता था ।

देखते देखते ऊषाका उदय हुआ । पूर्व दिशामें लाली दौड़ आयी । हर ओर उजेला हो आया । क्रमशः दिन चढ़ा । सूर्य्य देवकी सुनहली किरणोंके पड़नेसे नदीका जल गले हुए सोने सा हो गया । नदीकी दोनों ओर झुण्डकी झुण्ड भेड़ी एवम् गाय बैल आदि चरते हुए दिखाई देने लगे । कहीं कोई घाटों पर स्नान करता था । कहीं ललनागण अपने केशोंको मल रहीं थीं । कहीं कोई जल-क्रीड़ा करती थी । कोई कल-सोंमें जल भर भर कर ले जा रही थी । लड़के नङ्ग-शरीर जलमें कभी डूबते थे, कभी उतराते थे, कभी तैरते थे और कभी एक दूसरे पर जल वा कीचड़ फेंकते थे । कोई घाट पर बैठकर ध्यान पूजा और तर्पण करता था । कहीं जल-पक्षी सानन्द जलमें कुतूहल करते थे ।

इसी प्रकार नाना दृश्य तथा शोभा सौन्दर्य्यको देखते हुए, हम लोग अपने ग्रामके निकट पहुँचे ।

राहमें, मैं कितनी ही चिन्ता करता था । कभी जीमें आता था कि, हरेन्द्रका स्वागत मैं किस प्रकार करूँगा ? कभी सोचता था कि, मेरे घरकी मोटी चाल देखकर हरेन्द्र क्या सोचेगा ? कभी मनमें आता था कि, इसे मैं कहाँ

सुलाऊँगा? कहाँ बैठाऊँगा? इसके योग्य मकान और शय्या कहाँ पाऊँगा? मेरे गाँव एवम् घरके लोग इसे देखकर क्या कहेंगे? वहाँ इसका मन कैसे लगेगा? इत्यादि, इत्यादि।

सन्ध्या समय नौका घाटपर लगी। वहाँसे हम लोगोंको आध कोस पाँव-प्यादे चलना पड़ा। गाँवमें कोई सवारी नहीं मिलती। मेरे पास कोई सवारी थी नहीं। मार्गमें, मैंने कई बार कहा कि देखो, हरेन्द्र! आदि ही से, तुम्हें कैसा कष्ट होने लगा! इसीसे कहता था कि तुम मत चलो। चार डेग भी, कलकत्तेमें, तुम्हें पैदल चलनेका अभ्यास नहीं है सो तुम्हें इतनी दूर चलना पड़ा। तुम्हारे पैर क्या कहेंगे? तुम्हें देखकर मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है, क्या करूँ?

हरेन्द्रने हँसकर कहा कि मैं चलता हूँ, तुझे कष्ट क्यों होता है? तू जानता नहीं, कलकत्तेमें रहते रहते मेरा मन ऊब गया था; इसीसे यहाँ आया हूँ। तू चिन्ता मत कर। यह स्थान मुझे अत्यन्त मनोहर बोध होता है। देख तो ऐसा सुन्दर हरा भरा खेत, ऐसा सुहावना बगीचा, ऐसे सुन्दर ताड़ तथा खजूरके पेड़ एवम् पल्लव वहाँ कहाँ दिखाई देते थे? यहाँके पक्षी कैसे स्वच्छन्द बोल रहे हैं? यहाँकी हवा कैसी सुखद है? ऐसा शान्तिप्रद स्थान उस वृहद् नगरमें कहाँ है? वहाँके कोला-

हलसे कानोंकी झिल्लियाँ फटती थीं। सड़कों पर मारे भीड़ के पैर धरनेको ठौर नहीं मिलती थी। देखो, किसान सारे दिनके परिश्रमके फल-स्वरूप अनाजके बोझे अपने २ माथों पर लिये खलिहान की ओर जा रहे है। इन्हींके परिश्रमसे बड़े बड़े नगरोंमें हम लोगोंको भोजन प्राप्त होता है। यदि ये लोग इतना परिश्रम, यत्न तथा उद्योग नहीं करते तो क्या हम लोग सोना गला कर खाते? इधर देखो, झुण्डको झुण्ड गायें अपने बच्चोंके सङ्ग सानन्द गोशालाको जा रही हैं। हरी हरी स्वच्छ दूब चरनेके कारण इनका शरीर कैसा हृष्ट पुष्ट है। पवित्र भोजन मिलनेके कारण इनका दूध कैसा शुद्ध, स्वादिष्ट, विमल एवम् रुचिर होता है। देखते हो, हम लोगोंके नगरकी गायें कैसी होती हैं, जिनके शरीर तथा गोशालासे दुर्गन्ध निकलती है। दूधकी तो कोई बात ही नहीं, खाते पीते समय यह नहीं बोध होता कि दूध है वा पानी। जब तक इस देशमें किसानों तथा गाय बैलोंका आदर एवम् यत्न था; तब तक इस देशके धन धान्यकी कैसी वृद्धि थी। सुनता हूँ कि पहिले नगर नगर, गाँव गाँव में घाससे भरे हुए मैदानोंको लोग बीघेके बीघे ऐसेही छोड़ देते थे, जिसमें पशु वहाँ चर सकें। और अब तो मैदान छोड़नेको कौन कहे, जङ्गलोंको काट काटकर लोग खेत बना रहे हैं। उधर

देखो, ललनागण घड़ोंमें जल भर भरकर ले जा रही हैं, इन्हें देखकर हृदयमें भक्तिका उदय होता है। पहले मुझे अनुभव नहीं था ; किन्तु अब समझता हूं कि जो पवित्रता, स्वच्छता, सरलता, नीरोगता तथा आनन्द यहाँ राज्य करता है वह स्वप्नमें भी हम लोगोंके नगरमें प्राप्त नहीं हो सकता। तुम अधिक छेड़छाड़ न करो। स्वतन्त्र रूपसे, मुझे यहाँका सुख भोगने दो। योंही बात-चीत करते करते मेरा घर आ गया। वहाँ "दलानो" में, एक चटाई पर, मेरे पिता बैठे थे। मैंने और हरेन्द्रने उन्हें प्रणाम किया। हम लोगोंके माथे पर हाथ फेरकर उन्होंने कहा,—"बेटा! अच्छे रहे न? तुम्हारे मित्रको देखकर मेरा हृदय आज आनन्दसे उमड़ आया। जा, घरमें जाकर अपनी माको प्रणाम कर आ। अपने मित्रको भी साथ लिये जा। आज कई दिनोंसे वह तेरी बाट जोह रही है। इन्हें देखनेको भी उसे बहुत उत्कण्ठा थी। इन्होंने जो तेरी सहायता की है, उसके लिये हम लोग इन्हें हार्दिक धन्यवाद एवम् आशीर्वाद देते है। मा काली इन्हें चिरायु करें!"

हरेन्द्र—बाबूजी! आप ऐसा क्यों कहते हैं? मैंने राधाकान्तको क्या सहायता की? राधाकान्त मेरा छोटा भाई है। मेरी सम्पतिका अर्द्धभाग इसका है। यह

जो खाता है अपना खाता है, इसके लिये आप मुझे धन्यवाद क्यों देते हैं? किन्तु आपका आशीर्वाद मुझे शिरोधार्य्य है। राधाकान्त! चल, माका चरण-रज शीश पर चढ़ावें।

मैं अपने हृदयके वेगको रोक न सका। मेरी आँखों में आँसू भर आये। मनही मन मैंने ईश्वर तथा हरेन्द्रको कोटि कोटि धन्यवाद दिये। आज तक हरेन्द्रको जो मैं देवता समझता था सो प्रत्यक्ष ज्ञात हुआ कि वह, यथार्थ में, साक्षात् देवताही है।

हरेन्द्रको अपने साथ लेकर मैं घरमें गया। जाते लज्जा होती थी। अपने घरकी अवस्था मुझे विदित थी, किन्तु अब करता क्या? आँगनमें प्रवेश करतेही माको देखा कि वह ओसारेमें खड़ी है। मुझे देखतेही वह दौड़कर चली आई। हरेन्द्रके आनेकी बात वह पहलेहीसे जानती थी। हम दोनोंने उसे प्रणाम किया। उसने आशीर्वाद दिया। हरेन्द्रने पूछा—"मा! सब कुशल तो है?"

मुझे यही देखकर आश्चर्य होता था कि सहजमें हरेन्द्र ऐसा सबके साथ कैसे हिल मिल गया। उसके घर पर कोई ऐसा नहीं था, जिसका उसे आदर करना पड़ता हो। किन्तु यहाँ मेरे पिता माताका वह सहजहीमें आदर करने लगा।

माने हम लोगोंके बैठनेके लिये एक साधारण आसन भूमिमें बिछा दिया। मैं भी हरेन्द्रके साथ बैठ गया। नारियल पर घरका कूटा हुआ तम्बाकू हरेन्द्रको पीनेके लिये दिया गया। मनमें आया कि हरेन्द्र क्या चाहता होगा, उसको तम्बाकूकी सुगन्धसे चित्त प्रफुल्लित हो जाता था लेकिन इस तम्बाकूके धूँएँ से माथा घूम जाता है और खाँसी आती है। किन्तु करना क्या ? यहाँ वैसा तम्बाकू मिले कहाँ ? हा! मुझ से एक भूल अवश्य हुई है कि, मैंने कुछ तम्बाकू अपने पास कलकत्ते से नहीं रख लिया!

कुछ देर में मेरी माता एक चँगेली में हरेन्द्र के लिये चिउड़ा, मूड़ी, बूँट को चबेनी, नोन मिर्च के साथ लेकर आयी और जिस प्रकार मेरा यत्न करती थी, इसी प्रकार आदर से बोली,—"बेटा! खा, आज के दिन राह में कितना कष्ट हुआ होगा, ले खाकर अपने मन को प्रसन्न कर।"

मैंने उसे निषेध किया और मा से कहा कि क्या घर में मिठाई नहीं है। कुछ आटे की चीज़ बना क्यों नहीं देती?

हरेन्द्रने कहा, "राधाकान्त! तू क्या बक रहा है? मैं नहीं चाहता कि, यहाँपर मेरे किसी कार्य्यमें तू हस्तक्षेप करे। मा! कुछ नहीं, यही अच्छा है। रहने

दो। देखता हूँ कि सभी गर्मागर्म है, अभी का तैयार किया हुआ है।"

मेरी मा०—हाँ बेटा! अभी तेरे लिये, अपने हाथों से, बना कर लाती हूँ।

मैं कुछ बोल नहीं सका। देखा, कि हरेन्द्र जिस प्रकार तृप्ति के साथ चिउड़ा, चबैनी आदि खा रहा है, उस प्रकार मैंने कभी उसे उपादेय द्रव्यको भी खाते न देखा था। कुछ देर तक इधर उधर की बातें होती रहीं। अन्तमें भोजन का समय हुआ। मैं ने एकबार इच्छा की, कि भोजनके पहले बाहर से टहल फिर आऊँ; किन्तु मा ने जाने नहीं दिया।

भोजन के लिये, हम लोग जब चौके में गये तब तो मेरे प्राण व्याकुल हो गये। मुझे अपने यहाँ का भोजन देख कर, हरेन्द्र का प्रासाद याद आया, जहाँ नाना प्रकार का भोजन मुझे पहले दिन मिला था। आज मा ने उसके आगे मोटे चॉवल का भात, मसूर की दाल, बैंगन कोहड़े की तरकारी, उर्द की बड़ी, उत्तम घी, दूध और दही एक काँसी की थाली में ला रक्खे। मुझ से कुछ कहा नहीं गया; क्योंकि इस के पहले कई बार हरेन्द्र मुझे डाँट चुका था।

थाली को हरेन्द्र के सामने रखकर मा वहीं बैठ गयी और हाथ में पङ्खा ले कर हाँकने लगी। पुत्रवत्

स्नेह के साथ मा हरेन्द्र को खिलाने लगी। घर पर हरेन्द्र जितना खाता था, मेरी समझ में, आज उसने उससे दूना खाया; तोभी मा ने कहा,—"बेटा, थोड़ा और खाले। थाली में भात तो ज्यों का त्यों पड़ा रह गया। इस उम्र में नहीं खायगा तो फिर आगे चलकर क्या करेगा? थोड़ा और खाले, पेट मे रहने से गुण करेगा।

इस स्नेह-पूर्ण वाक्य को सुन कर हरेन्द्र के नेत्रों में नीर भर आया। इस समय उस के मन मे किस भाव का उदय हुआ, मै नहीं कह सकता। पूछनेका मुझे साहस भी नहीं हुआ।

भोजन के उपरान्त सोने की ठनी। पुआल पर हरेन्द्र के सोने के लिये एक दरी बिछी थी। मै ने सोचा कि और जो हुआ सो हुआ, किन्तु इस पुआल-शय्या पर हरेन्द्र को नींद कदापि नहीं आवेगी। किन्तु करता क्या? सुना कि घर में इससे अच्छा और कोई बिछौना नहीं है। हरेन्द्र के निकट सोने के लिये मैं ने बहुत हठ की। किन्तु मेरी एक भी उसने न मानी और मुझे घर में सोने के लिये भेजा। मैं नहीं कह सकता कि हरेन्द्र की रात कैसे कटी।

आठवां परिच्छेद।

प्रभात समय, घर में से बाहर आकर, मैंने देखा कि हरेन्द्र सुखसे सो रहा है। निद्रित अवस्था में उस के आनन को देख कर, मुझे ज्ञात हुआ कि उस के हृदय में शान्ति राज्य कर रही है। चिन्ता, कष्ट वा क्लेश का कोई चिन्ह वहाँ दीख नहीं पड़ा। मेरे मनमें आया कि मनुष्य क्योंकर सुखी होता है। सुख दुःखकी क्या कोई यथार्थ जाँच है? राज-मन्दिर में निवास करनेवाला हरेन्द्र, सुरम्य महलमें कोमल शय्या पर सोनेवाला हरेन्द्र, क्योंकर सुखसे, इस पर्णकुटीमें, इस पुआलकी शय्या पर, आज, सो रहा है? क्या धनसे, शारीरिक सुख से, मनुष्य को वास्तविक सुख नहीं मिलता? क्या अच्छे भोजन, सुन्दर बहुमूल्य वस्त्र, अनन्त दास दासी, मनुष्यको सुखी नहीं करते? यही सोचते विचारते, मैंने नारियल पर तम्बाकू चढा कर हरेन्द्र को जगाया। हरेन्द्र सानन्द उठ बैठा। तम्बाकू पीकर वह मेरे साथ टहलने चला।

दिन चढ आया था। किसान काँधे पर हल लिये खेतों को जा रहे थे। ग्वालबाल गायोंको चरानेके लिये

मैदानकी ओर हँसते खेलते जा रहे थे। सुन्दर वृक्षों पर चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। हरेन्द्र ने चलते चलते कहा,—"राधाकान्त' शुभ मुहूर्त्तमें,मैंने तेरा साथ किया। यहाँ आकर जैसा आनन्द मैं अनुभव कर रहा हूँ वैसा आजन्म नहीं किया था। इस सरल समाज को छोड़ कर, हम लोग क्यों नगर में रहने लगे? इस स्वच्छ आचार व्यवहार को हमलोगोंने क्यों छोड़ दिया? व्यर्थ हम लोगोंने क्यों ऐसा समाज बनाया कि देशकी सम्पत्तिका नाश हो गया और दिनों दिन हो रहा है? यदि हमलोग इसी साधारण भेष एवम् भावसे रहते, तो आज हम लोगोंका देश स्वर्ग-तुल्य रहता? क्यों हम लोग अपने सुख के लिये पराया मुँह जोहते है और दूसरे की बाहरी चमक दमक का अनुकरण करनेकी लिये अपने कोषका अनन्त धन दूसरे के पादपद्म पर अर्पण कर रहे हैं? तू जानता नहीं, तुझे अभी उतना ज्ञान नहीं है, इसी से तुझे ज्ञात नहीं होता कि, मुझे यहाँ इतना सुख क्यों हो रहा है। अधिक विचार बढ़ने पर तुझे ज्ञात होगा, कि मनुष्य जितनी सरल, सहज एवम् स्वाभाविक रीतिसे रहता है, उतना ही उसे सुख होता है। यहाँ आकर मुझे ज्ञात हुआ कि प्रेम, पवित्रता तथा सहानुभूति इन स्थानोंमें सहज ही में रहती है और जहाँ इन गुणोंका निवास रहता है वहाँ

द्वेष, अभिमान, अप्रेम आदि दुर्गुण भूल कर भी पदार्पण नहीं करते। व्यर्थ की मान-बड़ाई के लिये हमलोग बड़े बड़े नगरों में कैसे मरा करते हैं। देख, आज तुझ से एक भेद कहता हूं। तू अभी जानता नहीं, यदि और कुछ दिन हम लोगों के साथ रहेगा तो तुझपर विदित होगा कि, जितने लोगोंको तू मेरे निकट देखता है उनमें से कोई मेरे साथ स्नेह करनेवाला नहीं है। सब मेरी सम्पत्तिको चाहते हैं। मुझे कोई नहीं चाहता। अपने मतलब से सब मेरे पास आते है, मुझे घेरे रहते हैं। ईश्वर न करे, यदि मेरा धन नष्ट हो जाय, यदि मैं दरिद्र हो जाऊँ तो फिर मेरे पास कोई न आवेगा। बाल्यावस्था से ही धनप्रदत्त सुखको भोगने के कारण मुझे इतना ज्ञान हो गया है। यहाँ आनेसे मेरे चञ्चल मन को बड़ी शान्ति मिली है। अपनी अवस्था पर यथार्थ विचार करनेका मुझे बहुत अवसर मिलता है। तुझ से यह सब कहने की कोई आवश्यकता नहीं थी; किन्तु जब से मैं यहाँ आया हूँ, तू मेरे कामों में बहुत बाधा दे रहा है, इसीसे अपने मनोगत भावोंको तुझ पर प्रकट कर दिया। देख, मेरा जी जब तक चाहेगा मैं यहाँ रहूँगा, मेरे मनमें जो आवेगा वही करूँगा, तू छेड़छाड़ न करना। मै यहाँ सुख भोगने आया हूँ,

मुझे स्वच्छन्द सुख भोगने दे। तेरे आलोचना एवम् निषेध से मुझे कष्ट होगा। मैं अपने को स्वतन्त्र न समझूँगा। यहाँ जो आन्तरिक सुख मैं अनुभव कर रहा हूँ उसे तू अनुभूत नहीं कर सकता, उसका पता तुझे नही मिल सकता।"

प्रकाश में, मैंने अच्छा कहा; किन्तु यथार्थ में हरेन्द्र के मनोभाव को मैं समझ नहीं सका। मुझे ज्ञात नहीं हुआ कि, हरेन्द्र यहाँ इतना सुखी क्यों है। मैं देखता था कि खाने पीने सोने बैठने सब बातों का कष्ट यहाँ हरेन्द्र को है; तोभी वह यहाँ इतना सुखी क्यों है, उस का पता मुझे उस समय नहीं लगा।

पहर दिन चढ़ते चढ़ते, कितने लोग हरेन्द्र को देखने आये। कोई हाथमें नारियल लिये था, कोई हाथ पर "खइनी तम्बाकू" मल रहा था, कोई घिरनीपर रस्सी लपेट रहा था। सब के सब हरेन्द्र के निकट आ गये और आदर से किसीने पूछा, "क्यों बाबू जी! तुम्हारा घर खास कलकत्ते में है?" किसी ने कहा "बाबू जी! तुम कौन चाकरी करते हो?" किसीने पूछा, "तुम कितनी तलब पाते हो?" किसीने 'पूछा "क्यों बाबू जी! तुम्हारा देश इस देशसे अच्छा है?" एक ने उत्तर दिया,—"बाबूका देश अच्छा नहीं है, वहाँ जो जाता है उसे पानी लग जाता है।" इत्यादि इत्यादि।

आँख के इशारे से अपने ग्रामवासियों को मैंने बहुत निषेध किया ; किन्तु उन सबों ने मेरा कहना नहीं माना। हरेन्द्र भी सानन्द उन सबोंके निरर्थक प्रश्नोंका उत्तर देता गया ; जिससे वे सब और भी उस से निडर हो, सङ्कोच छोड़ वार्त्तालाप करने लगे।

इसी प्रकार दिन पर दिन बीतते गये। मुझे ज्ञात होता था कि, हरेन्द्र कलकत्ते से कहीं अधिक सुखी यहाँ रहता है। मेरे पिता भी उसका यथेष्ट आदर एवम् यत्न करते थे। कभी कभी स्वयम् तम्बाकू चढ़ा, दो चार फुँक पीकर, नारियल वहीं रखकर चले जाते थे, जिसमें हरेन्द्र स्वच्छन्द धूम्रपान करे। दिन में कई बार वह हरेन्द्र से पूछा करते थे, "बाबू! तुम्हें कुछ कष्ट तो नहीं है? तुम्हारा यहाँ जी तो लगता है?"

हरेन्द्र के बर्त्ताव से मेरे यहाँ सभी सन्तुष्ट थे। हरेन्द्र सभीका प्यारा हो रहा था। ज्ञात होता था, कि हरेन्द्र भी मेरे ही घर का लड़का, मेरा भाई ही है। उस के व्यवहार से मेरे पिता माता परम परितृप्त थे। हरेन्द्र प्रायः कृषकों को खिलाता था और उनके सङ्ग आप भी खाता था। दिन मे उन के साथ खेत घूमने जाता था। सन्ध्या समय उन के साथ फिरने घूमने जाता था और रात्रि समय उनके साथ बैठकर नृत्यगान करता था। कभी दोपहर के समय उन के साथ तैरता

था, कभी उन के साथ दौड़ता था, इस लीला को देख कर मेरे हृदय में एक अपूर्व्व भाव का उदय हुआ। मैं समझने लगा कि, सचमुच हरेन्द्र मेरा अपना भाई है।

एक दिन मेरे पिता घर पर नहीं थे। खेत पर हलवाहों को कलेवा ले जानेवाला कोई नहीं था। मैंने सुना कि घरमें जाकर हरेन्द्र मा से कह रहा है, "मा! मुझे दो, मैं खेत पर कलेवा ले जाऊँगा।" मैं डर गया, मेरा शरीर काँपने लगा। मैं कुछ कर न सका। मा को भी जैसी बुद्धि थी, उसने भी कुछ सोचा विचारा नहीं। एक चँगेनी में चबेनी और थोड़ा सा गुड़ देकर, उसने कहा,—"हाँ बाबू! मालिक घर में नहीं है, तुम दोनों जाकर हलवाहोंको कलेवा दे आओ।" हरेन्द्र सानन्द चँगेनी लेकर खेतपर गया। मैंने कितना निषेध किया, किन्तु उसने एक भी न माना।

इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये। एक दिन यकायक कलकत्ते से सम्वाद आया कि, हरेन्द्र के नाम एक "वारण्ट" निकला है। सुनकर, हरेन्द्रने हँस कर मुझ से कहा, "राधाकान्त! जानता है किसने "वारण्ट" निकलवाया है? वही मेरी मा ने।" यही उनका वात्सल्य स्नेह है। यह भेद तुझे नहीं ज्ञात होगा? तू दरिद्र सन्तान है, तू क्या जानेगा? हम लोग बड़े

आदमी हैं, हम लोगोंके घरका हाल तू क्या जानेगा? हम लोगोंका संसार प्रेमके बन्धन में बँधा नहीं रहता, वरन् स्वार्थकी ही रज्जूसे हम लोग अपनेको और अपने कुटुम्बियोंको बाँधकर रखते हैं। हम लोगोंके घर में धन का ही आदर होता है, व्यक्ति विशेष का नहीं। दरिद्र परिवार में भाईके साथ भाई नहीं लड़ता, माता पुत्रका स्नेह करती है, स्त्री पतिका यत्न एवम् भक्ति करती है, पति स्त्री का आदर करता है। हम लोगोंके यहाँ सबके सब अपने ही रङ्ग में रँगे रहते हैं। एक दूसरे को नहीं पूछते। सुख के दिन हम लोगों के परिवार में चैन से काटते हैं, किन्तु दुःख पड़ने पर किसी को कोई सुध नहीं लेता। बीमार पड़ने पर, हकीम वैद्य तो द्वार पर यथेष्ट बैठे रहते हैं, किन्तु रोगी के निकट, दास दासियों को छोड़कर, घरवाले भूलकर भी नहीं झाँकते।

धन व्यय कर औषधि तो आती है, किन्तु यत्नसे कोई रोगी को पिलाता नहीं। दूसरे के लिये कष्ट उठाना, हम लोग नहीं जानते। अपनी ही चिन्ता इतनी अधिक रहती है कि, दूसरेके दुःखके सङ्ग सहानुभूति प्रकाट करनेका हम लोगोंका अवसर होनहीं मिलता। दास दासी, अमले फैले, हितु मित्र, अपने पराये, सबके सब अपने ही लाभके लिये हम लोगों से सम्बन्ध रखते हैं।

जिन्हें तू मेरे यहां देखता है, जिन्हें तू मेरे साथ आमोद-प्रमोद करते देखता है, जिनसे मैं दिन रात घिरा रहता हूँ, उन में कोई मेरा अपना नहीं है। उन्हें मधुमक्षिका समझ। वे मधुके लोभ से मुझे घेरे रहते हैं। सम्पत्ति रूपी मधु घट जाने पर उनके सब हट जायँगे। कहाँ तक कहूँ,—जब मेरे सङ्ग कुछ दिन और रह लेगा, तब तुझे ज्ञात हो जायगा कि, मै कैसा सुखी हूँ। मा ने नालिश की है। वारण्ट द्वारा मुझे पकड़वा कर "जेल" (कारागार) में भेजनेकी चेष्टा कर रही है। स्त्री से सदा अनबन हो रहा। पीहर में ही रह कर, उस ने अपनी संसार-यात्रा समाप्त की। भगिनी की बात कौन चलावे? उन्हीं सब की बातों में पड़कर तो मा ऐसी हो रही है। किन्तु तुझसे इन बातों को क्यों कह रहा हूँ? तू सुन कर क्या करेगा? अभी तो तुझे बहुत कुछ दिखाना सुनाना है। तेरी सब बातें, मैं जानता हूं। किन्तु उन्हें प्रकाशित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं अब यहाँ ठहर नहीं सकता। यहाँ रहने में अब मेरी हानि है। मेरे न रहने पर, मेरी जायदाद के साथ वे सब कुछ बखेड़ा कर सकते है। यहाँ, मै बहुत निश्चिन्त था। किन्तु मैं ऐसा सुख भला अधिक दिनों तक कहाँ भोग सकता हूँ? अच्छा, जो होगा देखा जायगा। अब चल, तुझे

कलकत्ता साथ ले चलूँगा। इस वारण्ट की चिन्ता न कर, कलकत्ते पहुँचतेही यह तय हो जायगा। भरण पोषण की एक "डिगरी" माने मुझ पर करा छोड़ी है। उसीका इजराय उसने कराया है। चल कर, उसे रुपया दे देना होगा। अभी तुझे बहुत कुछ देखना है। देखने को अनेक वस्तुएँ हैं। चल अब देर न कर।

चलनेकी तैयारी होने लगी। हर ओर यह सम्बाद फैल गया कि, राधाकान्त का मित्र कलकत्ते जा रहा है। सब लोग आ आ कर हरेन्द्र से मिलने लगे। उस पर कितनी ही फ़रमाइशें हुईं। चलते समय, पिता ने हम लोगों को आशीर्वाद दिया। माता ने हम दोनों के शीश पर हाथ दे, अश्रु-पूर्ण लोचन और गद्गद स्वर से कहा, "बाबू हरेन्द्र! इस दुःखिनी को भूल न जाना। यदि अवसर मिले तो फिर कभी आ जाना। यह तुम्हारा घर है। मैं तुम्हें भूल नहीं सकती। पूर्व-जन्मका फल उदय हुआ था कि तुम्हें अपने घर देखा। तुम्हारे लिये आँखें टँगी रहेंगी। बेटा! देखना! कहीं इस बूढ़ी मा को भूल न जाना। मुझे अब कै दिन जीना है। किन्तु जब तक बची रहूँ, मुझे दर्शन देते रहना।

हरेन्द्रकी आँखों में जल भर आया। अपने मनके आवेगको वह रोक नहीं सका। बाहर आकर, वह

सिसक सिसक कर रोने लगा। अन्तमें सबसे मिल-जुल कर, हम लोगोंने कलकत्तेको राह ली।

नवाँ परिच्छेद।

कलकत्ता लौट आने पर "वारण्ट" का रुपया दे दिया गया। फिर आमोद-प्रमोद में दिन कटने लगे। एक दिन सुना कि आज "गारडिनपार्टी" (वाटिका विलास) है। जानेकी मेरी भी इच्छा हुई। इस के पहले, मैं इस विलास में सम्मिलित नहीं हुआ था। मेरा भाव हरेन्द्र पर प्रकट हो गया। हंस कर उसने कहा, "घर का सुख देख चुका। चल, बाहर का भी सुख दिखा लावें। हम लोग बड़े आदमी हैं। घर बाहर जहाँ होता है, सुख ही सुख भोगा करते हैं। चल, आज बाग़की बहार दिखा लाऊँ।"

सन्ध्या होते होते, बडे ठाट बाटसे, हम लोग गाडी पर चढकर शहर से बाहर बाग़की ओर गये। नगर से बहुत दूरपर, एक सुरम्य उद्यान था। लोहेके फूल कटे फाटकसे होकर, हम लोग भीतर घुसे। आज यहाँ की सजा-

वट देखते ही बनती थी। चारों ओर दिन की सी रोशनी (आलोक) हो रही थी। सड़क के दोनों ओर बड़े बड़े पेड, ज्ञात होता था, मानों चौकी देनेके लिये खड़े हों। सुन्दर रविशों में मनोहर पुष्प अपनी सुगन्ध हर ओर "बगरा" रहे थे। इनकी क्रपा से प्राण तथा चक्षु दोनों इन्द्रियों को सुख मिलता था। चाँदनी रात होनेके कारण, चन्द्रिका चारों ओर फैल रही थी। ज्ञात होता था कि, सारा उद्यान चाँदीके पत्र में मढ़ा है। एक ओर सरोवर में चन्द्र-विम्ब नाच रहा था और किञ्चित पवन के प्रसङ्ग से शत विम्बों को धारण करता था। इधर उधर फिर घूम कर, हम लोगोंने उद्यान की सजी हुई कोठीमें प्रवेश किया। वहाँ का दृश्य अपूर्व था। वस्त्राभूषण से सुसज्जित बाबू लोग ठाठसे बैठे थे। भोजन की अनेक सामग्री रखी थी। "शामपेन" तथा "व्हिस्की" की बोतलें नियम से रक्खी हुई थीं। कई नृत्यकियाँ खड़ी थीं। नाच गान हो रहा था। हम लोगों को देख कर, सब ने सादर स्वागत किया।

कुछ देर तक बड़ा आमोद प्रमोद हुआ। बहुत देर तक खाने पीने, रास रङ्गको चली। किन्तु देखते देखते वहाँ का दृश्य बदला। सुरा देवी की क्रपा से वहाँ पिशाच का राज्य हुआ। यह आनन्द-स्थान निरानन्द-

मय हुआ। फिर तर्क वितर्क, लड़ाई झगड़ा होने लगा। लोग एक दूसरे को दुर्वचन कहने लगे। कोई पड़ गया, किसीके हाथ से बोतल गिरी, किसी ने गिलास तोड़ दिया, किसी का कपड़ा खुल गया, कोई उठ कर नाचने लगा, कोई अलापने लगा, किसी ने वमन किया। इस में आधी रात ढल गयी। हरेन्द्र ने कहा, "राधाकान्त! देख। कैसा आनन्द है! किस सुख में हम लोग अपना जीवन बिताते हैं! अब यहाँ रहने की आवश्यकता नहीं है। अब चल, तुझे एक लीला और दिखाऊँगा।"

बाहर आकर, हम लोग गाडी पर चढ़े। हरेन्द्रकी जोड़ी 'सोनागाछी" की ओर चली। वहाँ आकर, वह एक बड़े मकान के द्वार पर खड़ी हुई। पीछे से एक पाल्की गाड़ी वहाँ आ पहुँची। इसमें चार स्त्रियाँ बैठी थीं। उन में से एक स्त्री उतर कर उस घर मे घुसी। सीढ़ी पर हम लोगोंको देख कर, वह हरेन्द्र को दुर्वचन कहने लगी। हँस कर उसनेकहा "राधाकान्त! देखता है, देख कैसा सुख है! तू सुख के अनुसन्धान में है, इसीसे तुझे सब कुछ दिखा रहा हूँ।" यह सुन कर, उस स्त्रीका तर्ज्जन गर्ज्जन अधिक बढ़ गया। इसी बीच एक सीटीकी आवाज़ आयी। रमणी चिहुँक उठी। उसके मुँह पर रङ्ग चढ़ा। हरेन्द्रने कहा, "राधा-

कान्त! बँसी बजी। इसका उपपति इसे संकेतसे बुला रहा है। अब यहाँ ठहरना उचित नहीं है। इसके यहाँ आनेकी बात थी। इसीसे हम लोगों को यहाँ देख कर इसने रङ्ग बाँधा था।"

युवतीके उत्तर पर कर्णपात न कर, हम लोग गाड़ी पर आ बैठे। रास्तेमें हरेन्द्रने कहा कि यह युवती "थिएटर" की एक पात्री है। इसके रूप पर मुग्ध होकर, मुझे बहुत कुछ हानि उठानी पड़ी है। बहुत दिनों तक हम लोगोंका मेल रहा। अब एक नया शिकार इसे मिल गया है और इसका मन मुझसे फिर गया है। इसका जार अत्यन्त कुरूप और दीर्घकाय है, किन्तु उसके हाथमें धन यथेष्ट है। देख, बड़े लोगोंको कितना सुख होता है। मुझे लालसा हुई थी, इसीसे सब कुछ दिखा दिया। तू भूलकर भी यहाँ पदार्पण न करना। लोग जानते हैं कि, हम लोग स्वर्ग-सुख भोग करते हैं; किन्तु यथार्थमें हम लोग नरक-यातना ही भोगा करते हैं। देख, तुझे मैं हृदय से चाहता हूँ, इसीसे तुझे सचेत किये देता हूँ कि उन कुवासनाओं में अपने को भूल कर भी न फँसाना। नहीं तो फिर पछतावेगा।

हरेन्द्रने उपदेश दिया, किन्तु मेरा हृदय एकबारही विलासिनी के नयन-बाण से बिंधगया था। पाप करने

की इच्छा नहीं रहने पर भी, मैं पापकी कीचमें फँस गया और दिनों दिन मेरा अधःपतन होने लगा।

पाप का चित्र दर्शन कर जो समझते हैं कि, पाप-लिप्सा दूर होती है उन्हों ने सौभाग्यक्रमसे कभी पापकी छवि देखी नहीं। पाप की अद्भुत आकर्षण-शक्ति होती है। जिसने काल सर्प जैसे पाप दृश्य को परित्याग नहीं किया, आजन्मके लिये वह पापका सहचर हो जाता है, इस में सन्देह नहीं। सद्गुरु के चरणके व्यतीत, इस दासत्व से मुक्ति पाने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। दुःख की ताड़ना से भी वासना निवृत नहीं होती, रोग शोक आदि पाप के मनोमोहन चित्र को हृदय से निकाल नहीं सकते। यदि किसीको ऐसा हुआ हो, तो वह अत्यन्त भाग्यवान है।

पाप से दूर रहना ही पाप से बचने का एक मात्र उपाय है। यदि कोई यह कहे कि, अधिक पाप करते करते जब जी भर जायगा तब पाप से अरुचि हो जायगी, तो यह उसकी भूल है। पाप-पङ्क में एकबार फँसने पर निकलना असम्भव हो जाता है। कुकर्म से मनुष्य को सन्तोष नहीं होता, लाभ से लोभ नहीं घटता; वरन् उसकी वृद्धि ही होती है। मन को दमन करनेसे, वासनाको रोकने से, चित्त पर अङ्कुश देने से, कुकर्म से जान बचती है। दूर भागने पर पाप

पीछा नहीं करता; किन्तु निकट जाने पर चिमट कर धर लेता है। यहाँ, मैं पाप देखने जा कर पाप में फँस गया। हरेन्द्र के उपदेश का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। दुनिया के सुखों से हरेन्द्र को घृणा होती जाती थी। सब वस्तुओं का यथार्थ स्वरूप उसे दृष्टिगोचर होता था। किन्तु लोभ तथा दुर्वासना की पट्टी मेरी आँखों पर बँधी थी।

उस समय तो नहीं, किन्तु अब मैं सोचता हूँ कि यदि अपने "होटल" ही में रहता, तो इससे कहीं अधिक सुखी रहता। दाव निकल जाने पर मनुष्य को ज्ञान होता है, काम बिगड़ने पर चेत होता है।

मेरे हृदय में पाप-वासना उद्दीप्त थी। हाथ में यथेष्ट धन था। समय एवम् सुयोग भी सहकारी थे। मेरे शीघ्र ही अधःपतन में क्या देर थी?

अपव्यय की उत्ताल तरङ्गोंमें धन बहने लगा। देखते देखते चारों ओर से कठिनाइयों ने घेर लिया। देना बढ़ने लगा। अपव्यय की उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। ऋण-जाल में, मै जकड़ गया।

ज्ञात हुआ हरेन्द्र मेरे व्यवहार एवम् आचरण से रुष्ट हो गया। अब प्रायः उससे मुझसे साक्षातकार नहीं होता। हरेन्द्र भी आज-कल संसार से कुछ विरक्त हो गया था। प्रायः वह अकेलाही रहता था। उसके

यहाँ लोगोंका आना जाना, अब, बहुत कम हो गया था। चारों ओर धूम मच गयी थी कि हरेन्द्र का सब कुछ चला गया। वह एक प्रकार दिवालिया हो गया है। किन्तु गाड़ी जोड़ी, नौकर चाकर, साज समाज में कोई कमी नहीं थी।

मैं कुछ समझ नहीं सकता था कि बात क्या है। ऐसा सुयोग भी नहीं मिलता था कि हरेन्द्र से पूछूँ। सर्व साधारण के निकट हरेन्द्र ही के द्वारा मेरा मान था। उसकी अवस्था मन्द हो जानेसे, मेरा भी मान घट गया। महाजन मुझे पीड़ित करने लगे। देखते देखते, मुझपर तीस हज़ार का ऋण हो गया। बेबस, मैं पिञ्जरबद्ध पक्षी की तरह छटपट करने लगा। अपनी अवस्थाका मुझे यथार्थ ज्ञान होगया। अपने कुकर्म्मों पर मुझे पश्चाताप भी होने लगा।

एक दिन सुयोग पाकर, हरेन्द्र से मैं ने सब वृत्तान्त कह सुनाया और अन्त में उस की सहायता मैंने चाही। सुन कर, वह बहुत देर तक निस्तब्ध रहा। कुछ देर के बाद उस ने कहा "अभी जा"।

इस उत्तर से मैं सन्तुष्ट नहीं हुआ। मेरा दुःख अधिक बढ गया। जान छुडानेका अपर उपाय सोचने लगा। किन्तु बुद्धि काम न आयी। माथा चकराने लगा।

सन्ध्या का समय था; मन बहलाने को मैं मैदान की ओर चला। मार्ग में मुझे एकबार अपने होटल की सुध आयी। एक दिन जो मैंने वहाँ स्वप्न देखा था और जो स्वप्न आज तक भूला हुआ था, वह भी याद आया। मैंने निश्चय जाना कि, अब मेरा निस्तार नहीं है। मरने के सिवाय इस का कोई उपाय नहीं है। मेरे कुकर्मों का प्रायश्चित्त अब आरम्भ हुआ। मेरा सुख-सूर्य्य अब अस्त हो चला।

दसवां परिच्छेद।

खिन्न मन, चिन्तामें निमग्न, अशान्ति का खिलौना अभी फिरता घूमता मैं क़िले के मैदान में आ पहुँचा। सन्ध्या हो आयी थी, आकाश में तारिकाएँ छिटक आई थीं; किन्तु इस विशाल नगर में तो दिन रात में कुछ उतना अधिक भेद ही नहीं रहता। गैस एवम् बिजलीके आलोक से चारों ओर उजेला हो रहा था। सड़कों पर गाडी घोड़े एवम् मनुष्यों की भीड़ से पैर धरना कठिन था।

आज मैं गाड़ी पर न आया था। अब कभी कभी मैं पैदल भी टहलने आता हूँ; क्योंकि अब हरेन्द्र का और मेरा सदा साथ नहीं रहता। हमलोगों की अवस्था में अब बहुत कुछ हेरफेर हो गया है। हरेन्द्र अब पहले जैसे ठाट-बाट से नहीं रहता, अपने लिये अब वह उतना व्यय भी नहीं करता। रङ्ग तमाशे से उस को अरुचि देखता हूँ। उस की मित्र-मण्डली के सभ्यों की संख्या दिनों दिन घटती जाती है। आजकल वह अधिक शान्त दीखता है और उस के चेहरे पर कभी कभी आनन्द की रेखा भी दीख पड़ती है। परन्तु इस परिवर्त्तन का कारण मुझे ज्ञात नहीं हुआ। मैं प्रायः सोच में रहता था कि, इस प्रकार का हेरफेर क्यों हो रहा है।

इधर मेरी अवस्था भी पहले की सी नहीं थी। आज पाँच छः वर्ष मुझे हरेन्द्र के सङ्ग रहते हो गये। मुझ पर यह प्रकट हो गया कि, जैसा मैं समझता था वैसे सुख में हरेन्द्र नहीं रहता था। साँसारिक सम्पत्ति यथेष्ट रहने पर भी, हरेन्द्र को मानसिक सुख नहीं है। वाह्य जगत् जैसा अनुमान करता है वैसा सुखी हरेन्द्र नहीं है। मैं जब होटल में था, तब मुझे ज्ञात होता था कि हरेन्द्र को कोई चिन्ता नही है; किन्तु यहाँ आकर मैं जान गया कि हरेन्द्र भी चिन्तावर्त्त में निमग्न

हुआ करता है, पारिवारिक सुख उसे कुछ भी नहीं है। अपने निकट बुलाकर हरेन्द्र ने मुझे सांसारिक सुख बहुत कुछ दिया, किन्तु मेरे हृदय से शान्ति जाती रही। इस के निकट रहने से, इस के निषेध करने पर भी, मैं पाप में लिपट गया। पाप की मोहनी छवि ने मुझे मुग्ध कर दिया। आज मै दुराचारी हो गया। ऋणसे जकड़ गया। मेरे हृदयमें चिन्तानल धधकने लगा। मेरे रोम रोम में अपवित्रता प्रवेश कर गयी। अप्रेम मेरे हृदय में राज्य करने लगा। रह रह कर मुझे ज्ञात होने लगा कि,इससे कहीं अधिक सुखी मै"होटल" ही में रहता था। मुझ पर पहले का सा स्नेह हरेन्द्र का नहीं रहा। ज्ञात होने लगा कि, हरेन्द्र अब मुझ से घृणा करता है। इसी सोच विचार में घूमता फिरता क़िलेके मैदान में एक म्युनिसिपल बेञ्च पर बैठ कर, मैं चारों ओर देखने लगा। बहुत से लोग इधर उधर आ जा रहे थे। इसी बीच आश्चर्य में आकर, मैने देखा कि एक साधु मेरी ओर चले आरहे हैं। उनके तेजोमय सुन्दर चेहरे को देखकर, मैं अपने को सम्हाल न सका। निकट पहुँचते ही उन के पैरों पर गिर गया। मेरे माथे पर उन्होंने हाथ दिया। ज्ञात हुआ कि मेरे सर से एक बोझ हट गया। मुझे उठा कर उन्हों ने "बेञ्च" पर बिठा दिया और आप भी एक ओर बैठ

गये। इस समय मुझे अपनी वर्त्तमान अवस्थाका पूर्ण ज्ञान हुआ और ज्ञात हुआ कि यहाँ बैठे बैठे बहुत देर हो गयी और रात एक पहर के लगभग बीत गयी।

देखते देखते मैदान खाली होने लगा। सब लोग अपने २ घर जाने लगे। हम लोग वहीं बैठे रह गये।

बहुत देर तक किसी ने कुछ नहीं कहा। महात्मा मेरी ओर ध्यान पूर्वक देख रहे थे। अन्तमें उन्हो ने कहा कि तू इतना चिन्तित क्यो है। जो करते है भगवान् ही करते है। अपने वशमें क्या है? बिना सोचे विचारे काम करने का यही परिणाम होता है। लोभ कभी अच्छा नहीं होता। तू पहले यथार्थ मे बहुत सुखी था। किंन्तु अपनी अवस्था से तू सन्तुष्ट नहीं हुआ। बार बार तू ने भगवान् से प्रार्थना की। तेरी प्रार्थना स्वीकृत हुई। तू हरेन्द्र के निकट पहुँचा दिया गया। देख, जिसे तू सुखागार समझता था वही दुखारण्य निकला। जिसे तू स्वर्ग समझता था वहीं आज तू नरक-यातना भोग रहा है। भगवान् मनुष्य की प्रार्थना अवश्य स्वीकार करते है। जो विनय कातर हृदय यथार्थ दुःखी होकर करता है वह विश्वेश के कानों तक अवश्य पहुँचती है। अतएव मनुष्य को उचित है कि, अपनी अवस्था समझ बूझ कर भगवान् से कुछ कहे। किन्तु ऐसा करनेकी मनुष्य में शक्ति

कहाँ है? अल्पज्ञ होनेके कारण, मनुष्य अन्तिम परिणाम को नहीं सोचता और क्षणिक सुख के लिये व्याकुल हो कर रोने गाने लगता है। फिर सदाके लिये शेष जीवन दुःख में ही बिताता है। अपने पथ्यापथ्य का विधान रोगी क्या जानता है? जो रोगी वैद्य की राय में अपनी राय अड़ाता है वह अधिक दुःख अवश्य भोगता है। रोगी को उचित है कि, वैद्य के हाथ में पूर्ण रूप से अपने को छोड़ दे। वैद्य पर भरोसा और विश्वास रखनेवाला रोगी सदा निश्चिन्त और सुखी रहता है। उसी प्रकार जो मनुष्य भगवान् पर भरोसा एवम् विश्वास कर अपने सब कामों का भार उन पर छोड देता है वह सदा सुखी रहता है; क्योंकि त्रिकाल-दर्शी भगवान् ही यथार्थ में जानते हैं कि, हम लोगोंके लिये क्या हितकर है। अब भी यदि तुम उन पर भरोसा कर, उन को शरणका आश्रय लो; तो तुम्हारा मङ्गल होगा। अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। यदि तू चाहे तो अपने को अब भी सुधार सकता है और इस दुखः-सागर के पार जा सकता है।

महात्मा को बातें सुन, मैं भौंचक सा रह गया। बहुत देर तक सोचने पर भी मेरे ध्यान में नहीं आता कि मैंने इन्हें कहीं देखा था। आज प्रथम बार, मैं इन्हें देखता हूँ तब यह क्योंकर मुझे और मेरे सब

हाल को जानते है। मुझ से रहा न गया। मैंने कहा "महाराज! मैंने तो आप को आज तक कहीं देखा नहीं। तब आप क्यों कर मुझे इतना जानते है? आप अन्तर्यामी तो अवश्य हैं। आप से क्या छिपाऊँ? कहानियों में मैंने ऐसा पढ़ा था कि कभी कभी मनुष्यों के हित-साधनार्थ आप जैसे महा पुरुष दर्शनदे जाते हैं। अब कृपा कर, आप मेरे निस्तार का कोई उपाय बताईये। इस समय मैं बहुत दुःखी हूँ। किन्तु मैं पहले आप का परिचय जानना चाहता हूँ।

उन्होंने कहा,—"मेरा परिचय लेकर तू क्या करेगा? किन्तु जब तू इतना आग्रह करता है तो ले सुन, कोई छिपाने की भी बात तो नहीं है। मैं एक परिव्राजक हूँ। इस शरीर को लोग ज्ञानानन्द कहते हैं। किन्तु आत्मा तो अमर है, उस का नाम और पता क्या बताऊँ। तुम मुझे नहीं पहचानते; किन्तु देखते ही मैंने तुम्हें पहचान लिया। तुम्हारे इस शरीरको ही नहीं वरन् तुम्हारे पहले शरीरों को भी जानता हूँ। वह सब बहुत बखेड़ेकी बातें हैं तुम से कहाँ तक कहूँ।"

उन की बातें सुन मेरी बुद्धि अकचका गयी। मैं सोच नहीं सका कि उन से क्या कहूँ। किन्तु मेरे मुँह से निकल गया,—"भगवान् को तो कितना पुकार रहा हूँ किन्तु कहीं दुःख तो दूर होता नहीं।

ऋण-जाल से छुटकारा पाने का कोई उपाय सूझता नहीं। इस संसार में कोई मेरा सहायक भी तो नहीं दीख पड़ता। एक हरेन्द्र की आशा थी किन्तु अब तो वह भी मेरी बातोंपर कान नहीं देता।"

ज्ञानानन्दने कहा कि विश्वास बड़ी चीज़ है। तुम विश्वास को न छाड़ो। अभीतक तुम्हें हरेन्द्रका आसरा है इसी से भगवान् तुम्हारी सुध नहीं लेते। जिस दिन हरेन्द्र का भी सहारा छुट जायगा, जिस दिन तुम समझ लोगी कि भगवान् को छोड़ कर तुम्हारा कोई दूसरा अवलम्ब नहीं है, ईश्वर के अतिरिक्त जिस दिन तुम्हारा कोई दूसरा उपाय नहीं रह जायगा, यदि उस दिन तुम अन्तःकरण से उस विश्वेश को पुकारोगी तो अवश्य वे तुम्हारी सहायता करेंगे। जब तक मनुष्य भटकता फिरता है भगवान् उस की ओर भ्रूक्षेप नहीं करते; किन्तु जहाँ मनुष्य तनिक भी उन की ओर बढ़ा तहाँ वह आगे बढ कर बीच ही से उसे उठा कर अपना लेते हैं। प्रार्थना करो, जगदीश से विनती करो। विनय से बढ़ कर लाभदायक कोई दूसरा पदार्थ इस संसार में नहीं है।

मैंने कहा कि आप जो कहते हैं उसके विरुद्ध मुँह खोलना तो मेरा धर्म नहीं है ; किन्तु क्या करूँ बेबस

हो कर कहना ही पड़ता है कि मेरे जानते तो आज तक भगवान् ने मेरी कोई प्रार्थना स्वीकार न की ।

झिड़क कर ज्ञानानन्द ने कहा,—अरे ! नराधम ! कृतघ्न ! यह तू क्या कह रहा है ? जानता नहीं, उपकार को स्वीकार नहीं करने से बढ़ कर कोई पाप नहीं है । पतित और चाण्डाल से भी कृतघ्न नीच है । तू क्योंकर कहता है कि आज तक मेरी कोई विनती नहीं मानी गयी ? मैं कहता हूँ कि विनती और प्रार्थना को कौन कहे । बिना कहे सुने, बिना माँगे ही तेरी आज तक सब इच्छाएँ पूरी होती गयीं । आज का नहीं, किन्तु पूर्व जन्म का तू एक उच्च आत्मा है । पहले ही के सम्बन्ध से आज भी जगदीश तेरी सुध ले रहे हैं । उन की इच्छा नहीं है कि तू अब अधिक पतित हो । अभी तक यह आशा थी कि तू अपने को सम्हाल लेगा किन्तु अब ज्ञात होता है कि तू निज स्वरूप को पहचान नहीं सका और कुछ दिन पाप में लिपटे रहने पर सदा के लिये तेरा सर्वनाश हो जायगा । इसी से तुझ से कहता हूँ कि चेत जा । अशरण, शरण, सदय, दयालु, सर्व समर्थ भगवान् से तू अपना दुःख सुख कह । उन्हें छोड़ कर दूसरा कोई किसी की सहायता नहीं करता और न कर ही सकता है । संसारका आसरा छोड़, उन्हीं की शरण में जा ।

फिर देखना क्या होता है। भगवान् तो कुछ आप करने आते नहीं। किसी के द्वारा ही सब कुछ करते हैं! किन्तु विज्ञ लोग सब कार्य्यों में उन्हीं का हाथ देखते हैं। मनुष्य को अथवा अपर जीवों को निमित्त कारण मात्र मानते हैं। सब साधना का सार बस एक मात्र प्रार्थना ही है। सर्वविधि दीन, ममता-विहीन की लाज वह अवश्य रखते हैं। कहनेवाले की कमी है वे तो असंख्य कानों से सुनने को तैयार रहते हैं। माँगनेवाले का अभाव है वे तो असंख्य हाथों को देने के लिये उठाये हुए हैं। अपनी ओर उन्हें देखने को कहो। फिर देख लोगी कि सहस्रोंनेत्रों से वह तुम्हारी ओर देखा करेंगे। अभी कुछ बिगड़ा नहीं है। उनकी शरण में जाने के लिये अभी देर नहीं है। आज ही उन से कहो, इसी मुहूर्त्त में उन की शरण में जाओ, इसी क्षण प्रार्थना करो। फिर देखो कि वह तुम पर कृपा करते हैं वा नहीं। तुम्हारी ओर वे दया-दृष्टि से देखते हैं वा नहीं। बस, इस समय इतना ही। मेरी बातों को विचारना, इन पर पूरा ध्यान देना, इन्हें काम में लाना, इन के अनुसार आज से अपना चरित्र संगठित करना; नहीं तो फिर पछताओगी। उनका भरोसा करो, उन से प्रार्थना करो, उन की शरण में जाओ; नहीं तो फिर तुम्हारी कोई सहा-

यता नहीं कर सकता। इस समय अब जाता हूँ। काम पड़ने पर फिर मिलूँगा। इच्छा करने पर, तुम मुझे देख भी सकते हो।

इतना कहकर, वे उठ खड़े हुए। मैं उन्हें रोक न सका। मैंने पूछा कि आप कहाँ रहते हैं। इस का उत्तर बिना दिये, न जाने, वे कहाँ चले गये। अन्धकार में, मै उन्हें देख न सका।

मेरी अवस्था आज विचित्र हो गयी। हिलने की शक्ति मुझ में न रही। अपनी भूत वर्त्तमान अवस्थाओं पर विचारता, चिन्ता-जलधि में गोते लगाता वहीं उसी "बेञ्च" पर मैं लेट गया।

ग्यारहवाँ परिच्छेद।

हेमन्त रजनीमें, मैं अकेला अपने कमरे में पड़ा था। चिन्ताके कारण नींद उचट गयी थी। मेरे छुटकारे का कोई उपाय नहीं देख पड़ता था। आज महात्माका दर्शन पाये मुझे कई दिन बीत गये। इस बीच, मैंने कई बार जगदाधार परमात्मा

से अपने लिये प्रार्थना भी की। आँखोंसे कितने आँसू बहाये। किन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। ऋणसे मुक्ति पानेका कोई उपाय नहीं मिला।

जब कभी हरेन्द्र से इस विषय में कुछ कहता था तब वह टाल देता था। रह रहकर हरेन्द्र की ओरसे भी मुझे अविश्वास होने लगा। मेरे ध्यानमें आया कि अब वह मुझसे औरोंके जैसा वर्त्ताव करने लगा। जगत्का यह नियम है कि, जहाँ किसी से रुपये पैसे की सहायता माँगो तहाँ वह इधर उधर करने लगता है। जो अपना मित्र है, जो बात बातमें मैत्रीका दम भरता है, जो कहता है कि तुम्हारे लिये मैं जान देनेको राजी हूँ, उससे भी जब कुछ माँगो तब वह अपने ही दुःखोंको कहने लगता है। यदि तुम्हारी इच्छा है कि मैत्री अटल तथा अविरल रहे, तो लेनदेनकी बातें न करो। पहले तो कभी ऋण करना ही न चाहिये। यदि किसी प्रकार काम चलता न दीखे, तो व्यवसायियोंसे लेनदेन करना उचित है। किन्तु आर्त्त नियम कब देखता है?

देखते देखते मेरा भरोसा हरेन्द्र पर भी नहीं रहा। अब यही सोचने लगा कि, यदि भगवान् ही सहायता करें तो जान बचे; नहीं तो अब जेलही में सड़ना पड़ेगा।

आज और दिनों से अधिक तकाज़ा महाजनों का हुआ। इसीसे आज चिन्ता अधिक बढ़ गयी थी। भगवान् मे बहुत कुछ विनय प्रार्थना की। अन्तमें महात्मा की सुध आयी। इच्छा हुई कि, यदि इस समय उनका दर्शन पाता ; तो सब जञ्जालों को छोड़ कर, इसी रातका उनसे संग हो लेता।

इसी सोच विचार में अपने सारे शरीर को उष्ण वस्त्रसे ढाँक कर, बिना किसीसे कुछ कहे सुने, मैं नीचे उतरा और बाहरका किवाड़ खोल कर हाते के बाहर हुआ। सौभाग्यवश, दरबान की नींद न खुली। जैसे ही मैं सडक पर आया कि मेरी दृष्टि एक मनुष्य पर पड़ी, जो मन्द मन्द गतिसे मेरी ओर अग्रसर हो रहा था। मैं डर गया। किन्तु कुछ और निकट आने पर यह देख कर कि वह महात्मा हैं, मेरे आनन्द की सीमा न रही। मैंने समझ लिया कि अवश्य ये अन्तर्यामी है। आगे बढ़ कर, मैं उनके पैरों पर गिर गया। मुझे सादर उठा कर, उन्होंने कलेजे से लगाया। मुझ ज्ञात हुआ कि हृदय का ताप निकल गया।

मैंने अपने आन्तरिक भावों को उन पर प्रकट किया। उन्होंने कहा कि कोई चिन्ता नहीं, चलो मुझे दो चार बातें तुमसे कहनी हैं। उन्हें साथ

लेकर मैं घरमें आया। वहाँ एक आसन पर वह विराज गये।

कुछ देरके बाद उन्होंने कहा,—"तुम इतने चिन्तित क्यों हो? उस दिन मैंने जो तुमसे कहा, उस पर तुमने ध्यान नहीं दिया। भगवान् से प्रार्थना करना और उनको कृपाके लिये धन्यवाद देना, यही मूल मन्त्र है। इसीके द्वारा मनुष्य की सब मनोकामनाएँ सिद्ध होती हैं।" मैंने दुःखी होकर कहा कि कहीं कुछ तो नहीं होता। आज कितने दिनोंसे सर पीट रहा हूँ; कोई लाभ तो देख नहीं पड़ता। अब, आप क्या कहते हैं?

महात्मा—क्यों, धन्यवाद देनेमें, कृतज्ञता प्रकाश करने में, इतने क्यों डरते हो? अनन्त ईश, अनन्त कालसे, तुम्हें अनन्त सुख दे रहा है। अतएव अनन्त वार, उसे अनन्त धन्यवाद देना होगा। कृतज्ञता प्रकाश करनेसे कृपा बढ़ती है। कृपा अनुभव करने से विश्वेश अधिक कृपा करता है। प्रार्थना की तुलना किसी अभ्यास से नहीं हो सकती। सब कर्म, जप, योग और सब साधनाओं से इसकी मर्य्यादा बढ़ी हुई है। विश्वास बड़ी चीज़ है। मेरे साथ यहाँसे भाग कर तुम कहाँ जाओगे? अपने महाजनों से तुम अपनी जान बचा सकते हो; किन्तु अपनी आत्मा

से भाग कर कहाँ जाओगी ? तुम्हारी आत्मा तुम्हें सदा दोषी ठहराया करेगी। जीवन में, तुम्हें सुख नहीं मिलेगा। कब तक, तुम चोरकी तरह रह कर,अपना जीवन, सुखसे, काट सकते हो ? दुःखी होने पर, दिलसे पुकारने पर, भगवान् अवश्य सुनते हैं। अब घबराने की कोई बात नहीं है। तुम्हारी प्रार्थना अङ्गीकार हुई। तुम्हारी विनती भगवान्‌के कानों तक पहुँच गयी। तुम्हारा दुःख अब दूर हो जायगा। बहुत शीघ्र कोई उपाय तुम्हारे ऋणके परिशोधका निकल आवेगा। किन्तु आज, इसी समय, तुम्हें एक प्रतिज्ञा करनी होगी। अबसे तुम्हें अपना चरित्र सुधारना होगा। ध्यान देकर देखो, अपनी पुरानी जीवनी की आलोचना करो। देखो, तुम्हारा चरित्र कैसा भ्रष्ट हो गया है! पाप-फाँस में तुम कैसे जकड़ गये हो! यदि तुम पापको परित्याग करो, अपने कुकर्मों पर पश्चात्ताप करो, फिर इस कुमार्गों पर भूल कर भी पैर न दो, यथा-लाभ सन्तोष को यदि काममें लाओ और धर्म्म-साधनमें आगेसे अपने अमूल्य समय को लगानेकी यदि दृढ़ प्रतिज्ञा करो ; तो भगवान् अवश्य तुम्हारी सहायता करेंगे। तुमने अब तक संसार को बहुत कुछ देखा। अब तुमको अवश्य ज्ञात होगा कि, धर्म्मको छोड़ कर मनुष्य को सुख नहीं है। अपने से बाहर होने की

चेष्टा करो। आज तुमसे कह देता हूँ कि हरेन्द्र पर भी भारी विपत्ति आनेवाली है। वरन् आ ही चुकी है। किन्तु वह तुम्हारा सच्चा मित्र है। अपने दुर्दिन में भी वह तुम्हें भूलता नहीं। प्रेमका स्वाद तुम्हारी मा ने उसे चखाया। सच्चे पवित्र स्नेहका उपदेश उसे तुम्हारी मा के निकट मिला।

अपने साथ तो सभी प्रेम करते हैं। किन्तु मनुष्य उसीको कहते हैं जो दूसरे के लिये अपना जीवन अर्पण करे। देखो, परोपकार से बढ़कर इस संसारमें दूसरा पदार्थ नहीं है। परोपकारी कभी दुःखी नहीं होता। सृष्टिके अपर पदार्थोंके सदृश दूसरे के लिये अपने जीवन को अर्पण करो। यही यथार्थ वैराग्य है। कर्त्तव्य-पालनमें, बद्धपरिकर होकर, अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करो, तब तुम अवश्य सब अवस्थाओंमें सुखी रहोगे। क्षुद्र वासनाओंके सीमाबद्ध केन्द्रसे निकल कर, सृष्टि मात्रके संग प्रेम एवम् सहानुभूति दिखाओ। अपने मनोरथ को उच्च करो। सूर्य्य, चन्द्र एवम् तारिकाओंके अनुकरण करनेकी चेष्टा करो। देखो, पृथिवी पर, किस प्रकार सानन्द ये उपकार की वृष्टि करते हैं। इनके जीवन का उद्देश्य केवल परोपकार ही है। अपना स्वार्थ इन्हें कुछ भी नहीं है। इन्हें किसी के साथ ईर्ष्या, द्वेष वा स्नेह नहीं है। किसीके साथ

ये प्रेम वा घृणा नहीं रखते। सब अवस्थाओं में ये अपने से आप सन्तुष्ट रहते हैं। देखो, इच्छा ही सब दु:खोंकी जड़ है। मनुष्य में प्रबल इच्छा रहती है, इसीसे वह इतना दु:खी रहता है। समझ लो, कि इच्छा ही करके, अपने में लिप्त हो रहनेके कारण, हमलोगों का संसार में पुनः पुनः आवागमन होता है।

विचारने से विदित होगा कि, निःस्वार्थ प्रेम ही से उत्तेजित होकर प्रकृति काम करती है। देखो. अपने कर्त्ताकी आज्ञा-पालन करने में प्रकृति ने अपने को पूर्ण रूपसे अर्पण कर दिया है और उन्हींके कार्य्य-साधनमें इसने अपने को विस्मरण कर दिया है। अपना कर्त्तव्य पालन करने में, अपने जीवन का महत् उद्देश्य सिद्ध करने में, उन्नतिके चरम शिखर पर पहुंचनेमें, परोपकार ही हमलोगोंको सहायता करता है। प्रकृतिका नियम देना है, लेनेकी वासना इसमें नहीं है, अग्रसर ही होना इसका धर्म है, पीछे हटना नहीं। लेनेके लिये प्रकृति उत्सुक नहीं होती, संकीर्णता इसका स्वभाव नहीं है। अपनी ओर देख कर, यह विश्राम नहीं चाहती। अपने कामोंके करनेमें यह कभी आलस्य नहीं करती। इसके प्रेमके प्रबल प्रवाह के सम्मुख सब विघ्न बाधाएँ बह जाती हैं। कोई

कठिनता इसकी गतिको रोक नहीं सकती। नदियाँ जल-दानके लिये बहती हैं। वे खेतों को हरा भरा करती हैं, उन में उपज-शक्ति देती हैं, सहस्रों मनुष्यों को, पशुपक्षियों को, जल दान करती हैं। वे बढ़ती हैं, फूलती हैं, तरङ्गित होती हैं, आनन्द से कल्लोल करती हैं, नाचती हैं, थिरकती हैं, विस्मित होती हैं और अपने निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचने के लिये सम्मुख परिधावित होती हैं। कोई विघ्न बाधा उन्हें उनके उद्देश्य-पालनसे विचलित कर नहीं सकती। अपने में स्वार्थको जलाने के लिये पद पद पर अपनी इच्छाको रोकना चाहिये; अपने में पवित्र प्रेम की वृद्धि करनी चाहिये। पुष्प वाटिका के कोनेमें विकसित होता है। वह अपने भाग्यसे सन्तुष्ट रहता है। उसे इसकी चिन्ता नहीं रहती कि वह किसी दूसरे स्थान पर आरोपित क्यों नहीं किया गया। कहीं क्यों न रहे, वह समभाव से सुगन्ध प्रदान करता है। वह अरि मित्रका विचार नहीं करता। उगता है, बढ़ता है, मुकलित होता है, फूलता है, विकसित होता है, गन्ध प्रदान करता है और फिर मुरझा जाता है। किन्तु सब दूसरे के लिये। उसको अपना स्वार्थ कुछ नहीं है। अपने लिये उसे चिन्ता कुछ नहीं है। अतएव उसे दुःख भी नहीं होता।

ऐसे ही उच्च विचारों के द्वारा मनुष्य अपने कर्त्ताका समीपवर्त्ती होता है और उसे ज्ञात होता है कि जीवन धारण करने का उद्देश्य क्या है? उसका धर्म और कर्त्तव्य क्या है? सुखी होनेका उपाय क्या है?

एक बात तुमसे और कहता हूं। ध्यान देकर सुनो। अब तुम कभी कामसे न भागना। बिना कामके रहने से बढ़ कर दुःख संसारमें कुछ नहीं है। तुम ठीक जानो कि काम ही करनेके लिये मनुष्य की सृष्टि हुई है। निष्कर्मा होना घोर पाप है। नाना प्रकार की कुवासनाएँ, बिना कामके रहने से, मनमें उत्पन्न होती हैं। बिना कामके रहनेपर विविध प्रकारकी चिन्ता, शोक, रोग और सन्तापका मनुष्य खिलौना बना रहता है। बिना कामका मनुष्य बेकाम और निकम्मा हो जाता है। किन्तु जो काम अपने सुखके ही लिये किया जाता है उससे शान्ति नहीं मिलती। मनुष्य-को उचित है कि, अपना कर्त्तव्य समझकर, काम करने में अपने तन, मन और समयको लगावे। कार्य्य उत्तम होना चाहिये। किन्तु परिणाम की ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं है। जो परिणामकी ओर ध्यान देता है वही दुःखी होता है। संसार का अपने को अङ्ग मानकर, उच्च उद्देश्यों पर लक्ष्य रख कर, काम किया करो। विलास को परित्याग करो। तुम्हारे

शरीर में बल है ; तुममें शक्ति है, समय है इन्हें काममें लाओ। यदि तुम इच्छा करो तो संसार का कुछ उपकार कर सकते हो। अपने बाहु-बल से यथेष्ट धनोपार्जन कर सकते हो।

देखो, धनसे संसार का सब काम हो सकता है। धन हमलोगों की बड़ी सहायता करता है। इसके द्वारा बहुत कुछ उपकार होता है। समय पर धनको उत्तम काममें लगाना चाहिये। धनको व्यर्थ व्यय करना बहुत भूल है। विलासमें इसे कभी व्यय न करना।

मैं समझता हूँ कि मेरे उपदेशों को तुम ग्रहण करोगे और इन्हें काममें लानेको चेष्टा करोगे। यदि मेरे कहे अनुसार तुम चलोगे ; तो आगे संसार में तुम्हें कभी दुःख नहीं भोगना पड़ेगा।

हरेन्द्र के लिये अब तुम चिन्ता न करो। इस समय तुम उसकी सहायता नहीं कर सकते। समय आने पर तुमसे कहूँगा कि क्या करना होगा। भविष्यको कोई रोक नहीं सकता। प्रारब्ध अटल है। जो अपने हाथमें नहीं है, उसके लिये चिन्ता व्यर्थ है। भविष्यको भगवान्के हाथमें छोड़कर, तुम अपने कर्त्तव्य पालन करनेमें लगो। इस समय अधिक कुछ कहना मुझे नहीं है। अब मैं चलना ही चाहता हूँ। किन्तु आजकी बातें तुम कदापि न भूलना। अब कहो,

तुम प्रतिज्ञा करते हो वा नहीं। प्रतिज्ञा करनेके पहले सौ बार सोच चलो। क्योंकि तुम जो प्रतिज्ञा करोगे, उसे पालन करना पड़ेगा। तुमसे कहना नहीं होगा कि,प्रतिज्ञा भङ्ग करना घोर पाप है।

मैंने कहा कि आप जो कहेंगे, वही करने को मै राज़ी हूँ। आप की आज्ञा अवश्य मानूँगा। किन्तु हरेन्द्र पर क्या विपत्ति आवेगी? क्या आप नहीं जानते कि उस को मासी के यहाँ से उसे अनन्त धन मिलने वाला है?

महात्मा—इस विषय में, मैं तुम से कुछ कहना नहीं चाहता। समय आने पर आप ही सब बाते जान लोगे। बस, मेरे कहे अनुसार काम करो। सब प्रकार तुम्हारा मङ्गल होगा। अब मै जाता हूँ। फिर कभी मिलूँगा। तुम चिन्ता न करो। भगवान् को याद रखो।

इतना कह महात्मा चले गये। मै वहीं बहुत सी बातें सोचते सोचते सो रहा।
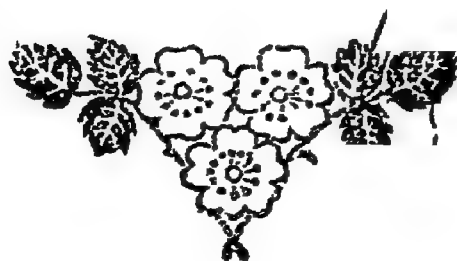
बारहवां परिच्छेद।

दूसरे दिन, आधी रात को, हरेन्द्र ने मुझे बुलाया। हम दोनों एक कमरे में अकेले बैठ कर बातें करने लगे।

घर में घुसते समय मैं ने देखा कि, कलकत्ते का एक धनाढ्य महाजन हरेन्द्र के कमरे से बाहर आ रहा है। मैं उसे पहचानता था, क्योंकि यही व्यक्ति मेरा भी महाजन था।

कुछ देर के बाद हरेन्द्र ने कहा,—"गंवार! मेरी बात न मान कर, तू ने अपना सर्वनाश किया। जा, इस बार तेरा ऋण चुका देता हूँ। किन्तु अब मुझ से तुझे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलेगी। जा इसी रुपये से अपना ऋण चुका दे। यह दस हज़ार रुपये लेकर अपने देश को चला जा और वहाँ सुख से परिवार में रहकर, अपनी जीवन-यात्रा निर्वाह कर। अब मुझे तू नहीं देखेगा। किन्तु मेरी बात मान कर अपने आचरण को ठीक रखना। अभी तक मैं तुझे प्यार करता हूँ। मेरा तो सर्वनाश अब हो चुका। मेरे सुधरने की आशा अब नहीं है। मेरा सब कुछ चला

गया। यदि इस बार भी तेरा चरित्र उन्नत न हुआ; तो मेरे मन से तू हट जायगा। आज सब कुछ तुझ से कह दूँगा। तू क्या जानता है, कि मैं तुझे क्यों इतना प्यार करता हूँ? जान पड़ता है कि तू नहीं जानता। मेरी मा मेरी नहीं है, यह तो जानता है। मेरी स्त्री मेरी नहीं थी, यह भी तो जानता है। जिस वाराङ्गना को मै प्यार करता था, वह भी मेरी नहीं है। जो भिखारी मेरे धन से आज धनी बन बैठे हैं वे भी मेरी निन्दा करते हैं, मेरा उपहास करते हैं। जो मुसाहिब मेरे धन से पाले गये हैं वे भी मेरे पीछे मुझे गाली देते हैं,यह भी तो जानता है। दास दासी सबके सब अर्थ की उपासना करते है, यह भी तो तुझे ज्ञात है। किन्तु सत्य हो अथवा मिथ्या, मेरी धारणा है कि तू स्कूल ही से मुझे प्यार करता है। मुझ पर तेरा स्नेह है। कोई नहीं जानता है किन्तु आज तुझ से कहता हूँ कि मेरा जीवन दुःखमय है। कभी मैं ने सुख को अनुभव नहीं किया। इस जीवन में, मैं कब सुखी हुआ था—क्या तू जानता है? वही जितने दिनों तक मैं तेरे घर पर था, मुझे सुख का, प्रेम का, स्नेह का, स्वतन्त्रता का, पवित्रता का स्वाद मिला था। वहीं मेरे मरुमय जीवन पर शीतल वारि की वृष्टि हुई थी। तू जा, अब यहाँ से जा। तू रो क्यों रहा है?

कुछ कहना चाहता है? किन्तु मैं कुछ सुनना नहीं चाहता! जा! जा। शीघ्र यहाँ से जा।"

रुपया ले कर, मैं घर से निकल आया। मेरे बाहर आते ही हरेन्द्र ने गाड़ी तैयार करने को आज्ञा दी। मैं समझ नहीं सका कि बात क्या है। मेरा कलेजा भर आया था, मुझमें यह शक्ति भी नहीं थी कि हरेन्द्र को अथवा भगवान् को धन्यवाद दूँ। एक प्रकार मैं पागल हो गया था। किसी बात पर कुछ ध्यान न देकर, मैं अपने घरपर आ कर बिछौने पर पड़ रहा। चेतना-रहित सारी रात मैं उसी अवस्था में पड़ा रहा। किन्तु यह ध्यान मन में प्रबल था कि हरेन्द्र को अपने देश फिर ले चलूँगा और जिस प्रकार हो सकेगा उसे सुखी करने की चेष्टा करूँगा।

दूसरे दिन प्रभात समय मुझे हरेन्द्र का एक पत्र मिला। उसे पढ़ कर मेरे माथे पर वज्राघात हुआ। उस में लिखा था कि मौसी की बात एकदम निर्मूल है। जाल करके, मैंने तुझे रुपया दिया। यदि मेरा उपकार करना चाहता है तो अपने को सुधार। कुसङ्ग को छोड कर, जिस प्रकार मुझ से मिलने के पहले तू रहता था उसी प्रकार रह। इसी में तेरा कल्याण है। यदि तेरा आचार सुधर गया तो मैं परम शान्ति पाऊँगा। पृथिवी में अब कोई मेरा पता नहीं पावेगा।

मुझे ढूँढ़ने की चेष्टा न करना। किन्तु कभी कभी मुझे याद करना।

पत्र पढ़ कर मैं उन्मत्तकी भाँति हरेन्द्रके घरकी ओर दौड़ा। वहाँ आ कर सुना कि हरेन्द्र कल रातही को अकेला कहीं चला गया है। कोई आदमी उस के साथ नहीं गया है और न किसी को यह ज्ञात है कि वह कहाँ गया है और कब आवेगा।

घर पर आकर जो रुपया मुझे हरेन्द्र से मिला था उसे ले कर उस महाजन के यहाँ गया, जिसे मैंने रात को हरेन्द्र के बैठके से निकलते देखा था।

वहाँ जाकर मैंने हरेन्द्रका तमस्सुक निकालने को कहा। महाजन मुझे जानता था। उसने तमस्सुक मुझे दिखाया। देखने से ज्ञात हुआ कि अपनी मौसी की सम्पत्ति को हरेन्द्र ने मकफूल किया है। बात की बात में सब बात प्रकट हो गयी। सब रुपया फेर कर, मैंने तमस्सुक ले लिया और हरेन्द्र के पत्र को उसे दिखा दिया। देख कर वह आश्चर्य्य में आ गया।

मेरे सत्य व्यवहार से सन्तुष्ट हो कर, उसने मेरे ऋण को क्षमा कर दिया। किन्तु मैंने कहा कि क्षमा करने की कोई बात नहीं है। इस समय तो आप का पावना मैं अवश्य नहीं दे सकता; किन्तु सुयोग पाकर मैं आप का ऋण चुका दूँगा।

इस के बाद उस का यह प्रस्ताव हुआ कि आप मेरे 'फर्म' में काम करें मैं आपको अपना हिस्सेदार बनाऊँगा। मैंने कहा कि इस में मुझे हानि नहीं है। किन्तु अपने मित्र का अनुसन्धान करना भी मेरा परम धर्म है।

महाजन ने कहा, मेरे यहाँ काम करते समय भी आप इस काम को कर सकते हैं। किन्तु मुझे आशा नहीं है कि आपको हरेन्द्र का पता मिलेगा।

कोई दूसरा उपाय न देख कर, मैं महाजन के "फ़र्म" का हिस्सेदार हुआ। कुछ दिनों में मेरा ऋण चुक गया और हाथ में कुछ पूँजी भी आ गयी; किन्तु अनेक चेष्टा करने पर भी अभी तक मुझे हरेन्द्र का कुछ सूत न मिला। कई समाचार-पत्रों में मैंने विज्ञापन छपवाये। बड़े बड़े नगरों में मैंने आदमी भेजे। किन्तु कुछ पता नहीं मिला।

थोड़े दिनों में नगर भर में यह सम्वाद फैल गया कि हरेन्द्र कहीं भाग गया। महाजनों ने उसके नाम नालिशें कीं। अदालत की डिकरी में उस की सम्पत्ति नीलाम हो गयी। किन्तु मुझे सन्तोष इसी बात का है कि उस की ज़मींदारी से उस का ऋण परिशोध हो गया। किन्तु इस समय इस संसार में एक चित्र को छोड़ कर, हरेन्द्र का स्मारक मेरे पास कुछ नहीं रह

गया। हरेन्द्र के लिये मेरी चिन्ता दिनों दिन बढ़ती गयी। उस के वियोग में, मैं सदा रोता रहा। उस की एक एक बात को स्मरण कर, मेरा कलेजा चूर चूर हो रहा था। किन्तु वश नहीं, क्या करता ?

अब मेरा आचरण पहले का सा नहीं है। अब मैं अपव्यय नहीं करता। पाप से कोसों भागता हूँ। महात्मा के कहने के अनुसार भगवान् से सदा प्रार्थना किया करता हूँ। धर्मसे भय खाता हूँ, सदा ईश्वर से मेरी विनती यही हुआ करती है कि, भगवान् किसी प्रकार हरेन्द्र से मुझे मिला दें।

द्वितीय खण्ड।

हरेन्द्रकी आत्म-कहानी

पहला परिच्छेद।

अपना सब कुछ गँवाकर, आज,मैं दरिद्र हो गया हूँ। संसारमें अब मेरा कोई नहीं है,मेरे पास कुछ नहीं है। क्या था, क्या हो गया, यह सोचकर मेरा कलेजा फटता है। आज तक मैंने कोई काम ऐसा नहीं किया जिसे सोच कर, जिसे स्मरण कर, मुझे सुख हो। धनको किसी अच्छे काम में भी नहीं ला सका। अपने शारीरिक सुखके लिये, अपात्रों पर, मैंने अपनी सारी सम्पत्ति न्योछावर कर दी। कुकर्म को छोड़ कर सुकर्म आज तक मुझ से बन न आया। एक राधाकान्त के सङ्ग जो मेरा व्यवहार हुआ है, उसीको स्मरण

कर मैं दुःखी नहीं हूँ। किन्तु ध्यान पूर्वक विचारने से विदित होता है कि, इस में भी मैं पूर्ण रूप से निर्दोषी नहीं हूँ। मुझसे मिलने के पहले राधाकान्त सुखी अवश्य था; उसे स्नेहमयी माता, वात्सल्य-पूर्ण पिता, पवित्र पतिपरायणा भार्य्या तथा अपर अनेक सुख थे। उसके हाथ में इतना धन नहीं था कि, वह पाप-पङ्क में धँस सके। वह परिश्रम कर धनोपार्ज्जन करता था। विलास में अपने समय को व्यर्थ नष्ट नहीं करता था। मैंने उसे धन दिया,उसे पापका स्वरूप दिखाया। संसार मैं उसे दुःखी किया। उसकी संसार-यात्रा को पाप-पूर्ण कर दिया। उसके सुखके मार्गमें कण्टक आरोपित किया। इसीके प्रायश्चित स्वरूप तो अपना सर्वस्व खोकर, उसे इतना धन दिया। आज मैं यह सोच कर अवश्य सुखी हूँ कि, अपना सब गँवाकर मैंने राधाकान्त को चिन्ताके चकोह से निकाला। किन्तु इसका क्या ठिकाना है कि, पाप-कर्मों में फँसकर, फिर भी, वह अपना सब कुछ खो न बैठेगा। किन्तु मै क्या करता? मैंने तो उसे निषेध अवश्य किया था। अब क्या हो सकता है? अब तो सब कुछ छुटा। साथ ही साथ राधाकान्तका साथ भी छुटा।

अब मैं क्या करूँगा? इस अनन्त जगत् में अब मेरा क्या कर्तव्य है? संसार में तो कुछ सुख नहीं

मिला। मुझे सभी सुखी जानते थे। सभी जानते थे कि, संसारमें मुझे कोई कष्ट नहीं है, कुछ चिन्ता नहीं है; किन्तु मैं तो एक दिन भी सुखी न हुआ। आज तक तो मुझे ज्ञात नहीं हुआ कि, आनन्द किसे कहते हैं।

आज मेरे निकट कोई नहीं है, मेरे पास कुछ नहीं है, किन्तु मनकी अवस्था में तो कुछ विशेष परिवर्त्तन नहीं पाता। मन तो जैसा पहले था, आज भी वैसा ही है। एक दिन वह था कि, जब मैं कहीं जाता तब मेरे असबाब से ष्टेशन भर जाता था। कुलियोंकी भीड़ लग जाती थी। सङ्गी मुसाहिब चारों ओर से घिरे रहते थे। वही मैं, आज रात को, ष्टेशन में अकेला खड़ा हूँ। ज्ञात नहीं होता कि, सोता हूँ अथवा जागता। आलस से बदन कसकसा रहा है। आज तक मैं सदा फर्ष्ट क्लास में जाता आता था; किन्तु आज मेरे पास "थर्डक्लास" का "टिकट" है। जो लोग रेल पर जाते आते हैं उन्हें अवश्य विदित है कि "थर्डक्लास" के यात्रियों को कितना कष्ट होता है। और कहीं हो अथवा नहीं, किन्तु "रेल" में यात्रा करते समय मनुष्यको अवश्य ज्ञात होता है कि दरिद्र और चाण्डाल बराबर हैं। मुझे कहीं बैठने को जगह नहीं मिली। "प्लेटफॉर्म" पर मैं इधर से उधर टहलता रहा, किन्तु-

सुविधा इसी बातकी थी कि मेरे पास कोई असबाब नहीं था।

कुछ देर में गाड़ी आयी। एक खाली गाड़ी देख कर मैं बैठ गया। आज सदा के लिये मैं अपने देश को परित्याग कर रहा हूँ। अब आशा नहीं है कि, मैं यहाँ फिर कर आऊँगा। आज मैं पश्चिम जा रहा हूँ, किन्तु इसका ठिकाना नहीं है कि कहाँ जाऊँगा, दिन कैसे कटेगा? अपने जीवन के शेष अंशको मैं क्योंकर बिताऊँगा?

गाड़ी खुली। गाड़ी खुलते ही मैं अपने मनोवेग को रोक नहीं सका। मैं बिलख बिलख कर रोने लगा। जिस पर यह विपत्ति नहीं पड़ी है, वह कदापि अनुभव नहीं कर सकता कि, मेरी इस समय क्या दशा थी। किन्तु समय क्या किसी को अपेक्षा करता है? देखते देखते समय बीतता गया। एक स्टेशन पर दूसरा स्टेशन आता गया। कुछ देरके बाद मुझे नींद आ गयी।

दूसरे दिन, सन्ध्या समय, मैं बनारस पहुँच गया। यहाँ मेरे परिचित अनेक व्यक्ति थे। किन्तु किसी के यहाँ जाना मुझे उचित ज्ञात नहीं हुआ। अतएव एक दो दिन ठहरनेकी इच्छा से, मैं धर्मशाला में उतर गया। इस के पहिले मैं कई बार काशीमें आया था।

किन्तु आज तक मुझे कभी धर्मशाला में ठहरनेकी बारी नहीं आयी थी ।

कुछ रात बीतने पर, मैं अकेला श्री विश्वनाथके दर्शनको गया । धन-मद से मुझे देवी देव में तो उतनी निष्ठा नहीं थी, किन्तु हिन्दू-वंश में जन्म ग्रहण करने के कारण उन में एक दम अविश्वास भी नहीं था ।

आज सोमवार है । मन्दिर में बड़ी हलचल मच रही है । आज श्री विश्वनाथ की आरती बड़ी धूम धाम से होती है । ठीक आरती के समय, मैं मन्दिर में पहुँचा । देख कर हृदय की विचित्र दशा हुई । मारे भीड़ के बदन से बदन छिलता था । सब श्रेणीके लोग हाथ जोडे एक साथ खड़े थे । शङ्ख, भेरी तथा नगाड़े की ध्वनि हो रही थी ।

आरती देखते देखते, एक बार मुझे औरङ्गज़ेब का अत्याचार याद आया । मैंने मन ही मन कहा कि देवता ठीक है, धर्म ठीक है, नहीं तो जिसके विनाश करने की औरङ्ग़ज़ेबने चेष्टा की थी, उसका विनाश तो नहीं कर सका, किन्तु उसीका सर्वनाश हो गया । उसीके अत्याचारके कारण भारतवर्षसे मुसल्मानोंका राज्य गया । जिस प्रकार प्राचीन कालमें श्री विश्वनाथ के दर्शनार्थ सहस्रों हिन्दू आते थे आज भी आते है, जिस प्रकार पूर्व में उत्सव मनाते थे आज भी

मनाते हैं, जिस प्रकार पहले नाम कीर्त्तन करते थे आज भी करते हैं, जो आदर पहले इस स्थान का होता था आज भी होता है। किन्तु जिस स्थानको मुगल चक्रवर्त्ती ने हिन्दूधर्म को धक्का पहुँचाने के लिये निर्माण किया था, उसकी क्या दशा है! आज वह जन-शून्य श्रीहत हो रहा है! घटा सूर्य्यको कुछ देरके लिये छिपा सकती है, किन्तु उसके तेज प्रताप का विनाश नहीं कर सकती। अन्त, भले का भला अवश्य-है।

मैं इसी सोच विचार में था कि इतने में किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ दिया। फिर कर देखा कि, सुखदेव मेरे पीछे खड़ा है। उसे देखते ही मै घबरा गया। मुझे कभी ऐसी आशा नहीं थी कि, सुखदेव को मै यहाँ देखूँगा।

सुखदेव मेरा एक दुष्ट सङ्गी है। यह भी एक बड़े घरका लड़का था; किन्तु बुरे सङ्ग में पड़कर नितान्त लम्पट हो गया था। एक दिन हम दोनों में बहुत मेल मिलाप था; किन्तु आज मै ऐसे दुष्टोंका साथ करना नहीं चाहता था। दूसरी कठिनाई यह थी कि, मैं इससे क्या कहूँगा? अपना परिचय क्या दूँगा? यदि इससे यथार्थ बात कह दूँ, तो हो सकता है कि, मेरे देशवालों को मेरा पता लग जाय। फिर बहुत सी

विपद् मुझ पर आ सकती है। किन्तु लाचार, इस समय करता क्या? इससे पिण्ड छुड़ाना तो कुछ सहज था नहीं। अतएव खूब सोच विचार कर मैंने यही ठीक किया कि, इस समय अपनी कोई बात इससे न कहूँगा। यह जो कहेगा वही करूँगा। कल फिर देखा जायगा।

आरती समाप्त हुई। श्रीविश्वनाथ को प्रणाम कर, हम लोग बाहर गली में आये और श्री अन्नपूर्णा का दर्शन कर, सदर सड़क पर निकल आये।
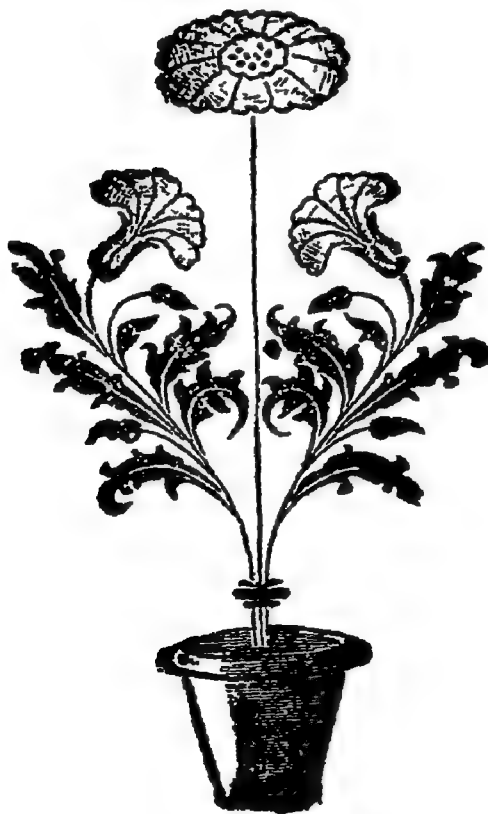
दूसरा परिच्छेद।

सदर रास्ते पर आकर, सुखदेवने मुझसे पूछा कि भाई तुम यहाँ कब आये?? कैसे हो? देखो, आज कितने दिनों पर तुमसे भेंट हुई। तुम्हें देख कर मैं कितना प्रसन्न हुआ? कहो, यहाँ तुम किस स्थान पर ठहरे हुए हो?

और प्रश्नोंका उत्तर न देकर, मैंने कहा कि मैं राज-घाट में ठहरा हूँ।

"यहाँ तुम अकेले क्यों आये हो?" सुखदेव ने पूछा।

"योंही! कोई विशेष कारण नहीं है," कहकर मैंने बात टाल दी।

सुखदेव ने कहा, "मेरी इच्छा होती है कि तुम इस समय मेरे साथ चलो। मैं यहाँ दशाश्वमेध पर एक मकान में ठहरा हूँ। देखो, वहाँ बड़ा रङ्ग जमेगा।"

मेरे मन में आया कि इससे साफ़ कह दूँ कि, इन सब बातों से अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु देखा कि ऐसा कहने से कहीं बात तूल न हो जाय, नहीं तो फिर मुझे अनेक बातें कहनी पड़ेंगी और

यह दुष्ट मेरा पीछा न छोड़ेगा। कोई आपत्ति न कर, मैं उसके साथ जाने पर राज़ी होगया।

पहले सुखदेवसे मेरी बहुत मित्रता थी। बहुत जल्सों में, एक साथ, हम दोनोंने रात बिताई थी। बहुतेरे कुकर्म हम लोगोंने एक ही साथ किये थे। मेरा बहुत धन इसके द्वारा भी बरबाद हुआ था। पहले इस के साथ रहने में मुझे बहुत आनन्द मिलता था, किन्तु—

"अगले दिन पीछे गये, अब रहीम वे नाहिं। अब रहीम दर दर फिरें, मॉग मधुकड़ी खाहिं।"

अब तो मुझे भय होता है कि, इसके साथ एक रात भी रहने से मेरा मन पुनः कलुषित हो जायगा। किन्तु क्या करता? कुछ उपाय नहीं सूझा।

रास्ते में, इधर उधर की व्यर्थ बातें कहता और नाना प्रकार की डींगें मारता, सुखदेव अपने डेरे की ओर चला। मैं भी उसके साथ उसके डेरे पर गया। वहाँ जाकर देखा कि, सुखदेव ने एक दो-महले मकान में डेरा किया है। वहाँ एक बुढ़िया और उसकी एक परमा सुन्दरी लड़की थी।

मैं जानता था कि सुखदेव इलाहाबाद में रहता है। यहाँ आकर, मैंने पूछा कि सुखदेव तुम यहाँ क्यों रहते हो? तुम इलाहाबाद से क्यों आये हो?

सुखदेवने कहा कि इसमें बहुत से भेद हैं। तुम

यही जान लो कि, आज दो महीनों से मैं यहीं हूँ। मेरे घरवालोंको इसका पता नहीं है कि, आजकल मैं कहाँ रहता हूँ। मकान वाली एक खतरानी है। इसी से मुझे कुछ काम है। किन्तु अभी तक यह पेंचमें नहीं आती। मेरी बात नहीं सुनती। इसीसे यहाँ डटा हुआ हूँ।

आगे बिना कुछ कहे ही,मैं सब बात ताड़ गया और कहा कि सुखदेव बुरेका परिणाम कभी अच्छा नहीं होता। तुम यहाँ मत ठहरो। घर जाकर सुखसे रहो। अब बिना कहे मुझसे रहा नहीं जाता। मेरी इच्छा थी कि अपना भेद तुमसे नहीं कहूँगा। किन्तु अब तुम्हारे भले के लिये कहता हूँ कि कुमार्गपर अब अग्रसर न होवो। इस राह पर चलनेसे, आज मुझे बेकाम हो जाना पड़ा। अपना सब खोकर मुझे संसार में अकेला भटकना पड़ता है। तुम भी चेत जाओ, अभी समय है; नहीं तो फिर पछताने से कुछ काम नहीं चलेगा।

सुखदेव ने मेरी बातों को ठट्ठे में उड़ा दिया। मैंने कहा,—"अच्छा तुम्हारी जो इच्छा हो वही करो; किन्तु मैं अब तुम्हारे निकट ठहर नहीं सकता।"

इतना कह कर, मैं वहाँ से चलने लगा; किन्तु सुखदेव ने मुझे आने नहीं दिया। मैं भी ठहर गया। क्या करता?

"जस होवत भवतव्यता, तैसो मिले सहाय। आप न आवे ताहि ढिंग, ताहि तहाँ ले जाय।"

मैंने मन में ठीक कर लिया कि, यदि इस समय यह मुझे नहीं जाने देगा तो सबके सो जाने पर, मैं उठ कर, बिना किसीसे कहे सुने, चला जाऊँगा और फिर सुखदेव से इस जन्ममें भेंट नहीं करूँगा।

खा पीकर सबके सब सो गये। मुझे एक कोठरी में अकेला छोड़ कर, सुखदेव कहीं दूसरी ओर सोने गया।

दो पहर रात ढलने पर, मैं उठ कर सावधानी से नीचे उतरा। साथ में दियासलाई थी। इसीके सहारे, टटोलता हुआ, सदर दरवाज़ा खोलकर गलीमें निकला। सौभाग्यवश, किसीने मुझे आते नहीं देखा।

मकान से बाहर होकर, मैं अँधेरी गलियों में चलने लगा। भय होता था कि कहीं कोई देख न ले। भूलने का तो डर नहीं था; क्योंकि इसके पहले बहुत बार मैं श्री काशी जी में आ चुका था।

कहीं किसीसे भेंट न हुई। तीन पहर रात बीतते बीतते, मैं धर्मशालामें वापिस आया और अपनी कोठरी में जाकर सो रहा।

नींद आते ही स्वप्नदेवी की सहायता से, मैंने देखा कि एक गौर-कान्ति महात्मा मेरे निकट आकर कह

रहे हैं कि तूने अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ खो दिया। ईश्वर ने तुझे धन, बल, बुद्धि सब कुछ दिये थे। किन्तु जान सुन कर, भले बुरे का विचार रख कर भी, तूने इस जगत् में कुछ नहीं किया। देख! तू राधाकान्त के लिये अब चिन्ता न कर, उस का मन विमल हो गया है। इस संसार में, अब,वह कोई निन्द-नीय कार्य्य नहीं कर सकता; किन्तु तुझे अभी संसार में बहुत कुछ दुःख उठाना है। आनेवाली विपत्ति का सुत्रपात आज इसी काशी में हुआ। सुखदेव के निकट जाकर, तू ने अच्छा नहीं किया। वह सामने देख। इतना कह कर महात्मा ने उँगली के इशारे से पश्चिम की ओर दिखाया। मैं ने देखा कि, उस खत्री की लड़की को, जिसे मैं अभी देख आया था, सुखदेव एक भुजाली से काट रहा है। मै उस के पास खड़ा निषेध कर रहा हूँ। किन्तु मेरा कहा न मान, सुखदेव ने उस की हत्या की और मेरे हाथ में रुधिर लगी भुजाली देकर कहो भाग गया। उस रमणी की चिल्लाहट सुन कर, लोग चारों ओर से दौड़ आये और सब ने मुझे पकड़ लिया।

घबराकर, मै चिहुँक उठा। देखा कि भोर हो गया है। धर्मशाला के सब लोग जग गये है। मैं बिछौने पर बैठा, अपने स्वप्न के विषय में सोचने लगा।

मन में कहा कि हाय! भाग्य में क्या बदा है? सब कुछ तो गया, एक शरीर का बोझ संसार में ढोता फिरता हूँ! किन्तु अब देखता हूँ कि इसे भी नहीं रख सकूँगा। शरीर-पतन का तो मुझे भय नहीं है; मरने से तो मैं नहीं डरता; क्योंकि जीवन में अब सुख नहीं है, सुख की आशा नहीं है। जब सुख ही नहीं रहा: तब जी कर क्या करूँगा? किन्तु चिन्ता इसी बात की हो रही है कि, कुकर्म में फंसकर कहीं जान न गँवानी पड़े। हाय! हाय! क्या करूँ? अब तो बुद्धि काम नहीं करती। यह महात्मा कौन थे, इनसे बचने का कोई उपाय क्यों न पूछ लिया। जो हो: किन्तु हे भगवन्! मुझे अब कुकर्मों और कुसंगों से बचाओ।

इसी चिन्ता में बहुत देर तक बैठा रहा। अन्त में, कुछ दिन चढ़े स्नान करने गया। घाट पर बैठते ही मन में शान्ति आयी। श्री काशी में, गङ्गा-तट पर बैठने से, जो शुद्ध शान्ति मन में आती है उस का विवरण लेखनी द्वारा कदापि नहीं किया जा सकता। जिस ने स्वयम् एक बार इस सुख को अनुभव नहीं किया, वह कदापि इसको नहीं समझ सकता। नर, नारी, आबाल, वृद्ध, वनिता सब के सब, एक साथ घाटों पर स्नान मज्जन किया करते हैं। कोई पटरे पर बैठा ध्यान करता है, कोई अपने इष्टदेव का नाम ज़ोर ज़ोर से पुकारा करता

है। भिन्न भिन्न देशों के निवासी, भिन्न भिन्न भेष भूषा से, यहाँ दिखाई देते है। लोग कहते है कि, विश्वनाथ-पुरी सौन्दर्य्य का केन्द्र है, इस में कोई सन्देह नहीं। प्रभात समय घाट पर बैठने से एक से एक सुन्दर रमणी दृष्टिगोचर होती है। सम्पत्ति की भी सीमा नहीं है। जिसे देखो स्वर्ण रत्नालङ्कार से नख सिख ढकी हुई है।

यही सब देखता सुनता मैं घण्टों वहीं बैठा रह गया। पहर दिन चढ़े, श्री विश्वनाथ का दर्शन कर, सदर रास्ते पर आया। यही सोच रहा था कि, अब मै क्या करूँ? कै दिन तक इस प्रकार अपने समय को यहाँ बिताऊँ? कभी मन में आता था कि, किसी सन्त के निकट जाकर सन्यास धारण करूँ; क्योंकि अब तो संसार में कुछ ऐसा बाकी न रहा कि जिस के सङ्ग मेरा अनुराग हो। कहाँ जाना ठीक होगा, यही प्रश्न मुझे व्याकुल कर रहा था, क्योंकि काशी ऐसे धाम में मुझे रहना रुचिकर नहीं था।

इसी सोच विचार में था कि, कोतवाली के सामने दो आदमियों को बात करते सुना कि, दशाश्वमेधमें एक खतरानी की लड़की को कोई बङ्गाली कल रात में कहीं भगा ले गया। उसे घर का कोई पहचानता नहीं। पहले पहल कल ही वह यहाँ आया था।

सुन कर मुझ पर बिना मेघ का वज्र टूट पड़ा।

मुझे ज्ञात हुआ कि, मेरे चले आने पर सुखदेव ने कोई चक्र चलाया। बिना कुछ सोचे विचारे, मैं सीधा ष्टेशन पर चला आया और श्री मथुरापुरी की ओर प्रस्थान किया। मन ही मन में बहुत पछताता था कि बनारस क्यों आया? सुखदेव के साथ उस के डेरे पर क्यों गया? वह खतरानी कौन है? इस का रहस्य क्या है? एक बार मन में आया कि देश को फिर चलूँ। वहाँ जाकर राधाकान्त से सब बात कह दूँ और उसकी आज्ञा से, उस के देश में जाकर, सुख से उस के परिवार में रह कर अपने दिन बिताऊँ। किन्तु सोचना क्या काम आता है?

मनुष्य सोचता है एक बात, होती है एक बात! मैं कब सोचता था कि मेरी यह दशा होगी? पूर्वजों की अनन्त सम्पत्ति को धूल में मिला कर, मैं पथ का भिखारी हो जाऊँगा। अब तक कुछ बिगड़ा नहीं था। आज भी जाकर, यदि मैं अपनी सम्पत्ति का उचित प्रबन्ध करता तो खाने पीने का कष्ट न होता। किन्तु अदृष्ट में कुछ और ही बदा था। मेरी सुमति मुझे ऐसी सम्मति क्योंकर दे!

तीसरा परिच्छेद।

आज श्री मथुराधाम में, श्री जमुना के तट पर खड़ा, मैं अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव कर रहा हूँ। प्रभात का समय है। जल-कण से शीतल होकर सुखद दक्षिणी समीर बह रहा है। जमुना की तरङ्गों पर बालरवि की किरणें नाच रही हैं, जिन्हें देखकर हृदय मारे आनन्दके नाच रहा है। अपनी अवस्था की सुध आज जाती रही। मुझे आज वह दिन याद आया, जब सहस्रों वर्ष पहले आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र इसी पतित-पावनी कालिन्दी के पुण्यतट पर खड़े होकर, अपनी वशीकरण बाँसुरी को सानन्द बजा रहे थे। फिर वे दिन याद आये, जब यदुवंशियों को लेकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर, बीच के राज्यों को पराजित करते हुए, अन्त में समुद्र-तट पर श्रीद्वारिकापुरी में श्री कृष्ण ने अपना राज्य स्थापित किया।

एक वह दिन था, और एक वह भी दिन था कि जब बुद्ध देव के प्रभाव से सारे देश में बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ और अशोकके शासनकाल में, इस स्थान में, कितने ही बौद्ध मठ स्थापित हुए। कुछ दिनोंके बाद,

श्री जमुना जी ने वह भी दृश्य देखा जब ग़ज़नी, ग़ज़नवी और औरङ्गज़ेब की अमलदारी में हिन्दू-मन्दिरों की नींव उखाड़ी गयी ।

क्या से क्या हो गया ? विचारते कलेजा दहल उठता है । रोंगटे खड़े हो जाते हैं । किन्तु करना क्या है ? किसी मनुष्य , जाति अथवा देश की अवस्था सदा एक सी नहीं रहती । जिस दशा में हम लोग आज संसार को पाते हैं कल कभी नहीं पाते । हम लोग अपने कुकर्मों का फल भोग रहे हैं । जब से हम लोगोंका जाति-गौरव, धर्म-गौरव और देश-गौरव चला गया तब से हम लोगों का सब कुछ गया । किन्तु क्या आज भी हम लोग अपने को पहचानते हैं अथवा पहचानने की चेष्टा करते हैं ? हम लोगोंके पूर्वज बड़े थे- ऐसी डींग हाँकने से केवल काम नहीं चल सकता । उन का अनुकरण करने का यत्न करो ।

किन्तु जो हो, और स्थानों से कहीं अच्छा अभी तक यह धाम है । इस पुण्यभूमि को देखकर आज भी हृदय में आनन्द की तरङ्गें उठने लगती हैं । आज भी ज्ञात होता है कि, इसकी निकुञ्जों तथा गलियों में सच्चा प्रेम राज्य कर रहा है । एक बार जिस ने इस के मन्दिरों का दर्शन किया, वह कदापि उन के सौन्दर्य्य को भूल नहीं सकता ।

महीनों में, आनन्द पूर्व्वक, यहाँ रहा। और किसी बात की तो चिन्ता नहीं थी ; किन्तु कभी कभी राधाकान्त की सुध आ जाती थी। मन में आता था कि, यदि राधाकान्त यहाँ रहता तो दोनों मित्र मिल कर कैसे सुख से इन निकुञ्जों का दर्शन करते।

समय की विचित्र गति है। एक दिन सन्ध्या समय बरसाने से फिर कर, मैं अपने डेरे पर आ रहा था। दैवयोग से, राह में मेरी दृष्टि सुखदेव पर पड़ी। उसे देख कर, मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मेरी इच्छा हुई कि,उसकी आँख बचाकर,कहीं भाग जाऊँ ; किन्तु ऐसा हो नहीं सका। उस ने मुझे देख लिया और दौड़ कर वह मेरे समीप आ गया।

पास आ कर, वह ज़ोर से हँसने लगा। हँसी बन्द होने पर, उस ने कहा,—"यार! क्यों छटक रहे हो? उस रात को तुम ने तो मुझे खूब धोखा दिया। तब से तुम्हें मैं कितना खोजता रहा, पर कहीं पता नहीं लगा। जो हो, आज तो तुम्हें मैं छोड़ने का नहीं भला कहो तो, तुम मुझ से इतने क्यों भाग रहे हो। मैंने तुम्हारा क्या बिगड़ा जो मुझ से घृणा कर रहे हो। देखो, मैं घरसे निकाल दिया गया। घरसे अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा। आज तुमसे कोई बात मैं नहीं छिपाऊँगा। उस दिन भी इसी विचार से, मैं

तुमको साथ लेगया था। आज भी तुम से यही कहना है कि अब मुझे धनका बहुत अभाव हो गया है। कभी कभी खाने पीनेका भी कष्ट हो जाता है। मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पास यथेष्ट धन है। तुम्हारा हाथ रोकने वाला कोई नहीं है। बस, तुम मुझे कुछ रुपये दो।

मैंने सोचा कि अब बात छिपानी ठीक नहीं है। जब तक सच्ची बात नहीं कहूँगा, यह मेरा पिण्ड नहीं छोड़ेगा। अतएव मैंने कहा कि देखो, सुखदेव! तुम भ्रममें पड़े हो। उस दिन भी मैं सोचता ही रह गया किन्तु कुछ साफ़ कह नहीं सका। सुनो, अब मेरे वे दिन नहीं हैं। अब मेरे हाथमें धन नहीं है। सब कुछ गँवाकर आज यहाँ मारा मारा फिरता हूँ। मेरे द्वारा अब तुम्हारा कुछ काम न चलेगा। मेरे साथ रहने से अब तुम्हें किसी प्रकार सुख नहीं हो सकता। किन्तु यह तो कहो कि उस दिन जिस युवती के घर पर तुम थे उसका क्या हुआ?

सुखदेव—मैं तो नहीं जानता।

मै—वहाँसे तुम कब आये?

सुखदेव—क्यों? तुम्हें क्या?

मै—मैंने बाज़ार में सुना था कि कोई बङ्गाली उस खतरानी को कहीं भगा ले गया है। इसी से तुम से

पूछता हूँ, मुझे भय हुआ था कि कहीं तुम्हीं ने तो ऐसा काम नहीं किया।

सुखदेव—जब तुम इतना जान गये हो तब वह भी सुन लो। तुम से छिपाने ही के लिये, मैंने तुम से बातें बनाई थीं। उसे मैं भगाकर नहीं ले आया हूँ। वरन् वह अपनी मा को धोखा देकर मेरे साथ चली आयी है। उसके पास धन भी यथेष्ट है। जब तुम्हें धनका इतना अभाव है; तब कुछ दिन सुखसे मेरे ही साथ क्यों नहीं रहते हो?

मैं—इसकी क्या आवश्यकता है। अब मुझे रुपये का कुछ प्रयोजन भी तो नहीं है। अब तो किसी प्रकार जीवन-यात्रा निर्वाह कर लेना ठहरा। आगे के से मेरे विचार अब नहीं रह गये। अब दुःख-सुख की मैं उतनी चिन्ता नहीं करता। और विचार कर देखने पर ज्ञात भी तो यही होता है कि, दुःख-सुख कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। यह केवल मन की कल्पनामात्र है।

सुख०—यह सब व्यर्थकी बातें हैं। देखो, ऐसा न कहो। इस प्रकार तुम अपने दिन कब तक बिता-ओगे? तुम्हें देख कर, पहले ही, मुझे सन्देह हुआ था और यही जानने के लिये तुम्हें अपने साथ ले भी गया था। किन्तु उस दिन तुम ने मुझे धोखा दिया। अब

ऐसा नहीं हो सकता। इस बीच में, मैं सब भेद जान गया हूँ। देशके एक व्यक्तिसे मेरी भेंट हुई थी, वही सब कुछ कहता था। यथार्थ भेद जाननेके लिये, मैंने रुपये की बात छेड़ी थी। बस, अब किसी प्रकार तुम्हें छोड़ नहीं सकता। मेरे साथ तुम्हें चलना ही होगा।

यह कह सुखदेव ने मेरा हाथ थाम्ह लिया। अब क्या करता, कुछ ठीक नहीं कर सका। किन्तु मेरी आत्मा कहती थी कि, इस के साथ जानेमें कुशल नहीं है। रह रह कर यह आवाज़ मेरे कानों में आती थी कि, जिस प्रकार हो सके यहाँसे भाग चलो। मुझे चुप देख कर सुखदेव ने कहा,—"देखो, तुम भय क्यों करते हो? आजकल मै ग्रन्थकर्त्ता भी हो गया हूँ। कितनी ही किताबें लिख डाली हैं। तुम्हें सुनाऊँगा। तुम मेरे साथ चलो। मेरे निकट रहने से तुम्हें किसी बातका कष्ट नहीं होगा।"

मैंने कहा,—"सुखदेव तुम मुझे क्षमा करो। तुम सब बातोंको नहीं जानते। तुम्हारे चले आने पर, कोतवाली वाले धूम मचा रहे थे। तुम स्वच्छन्द नहीं रह सकते। एक दिन न एक दिन, तुम गिरफ़ार हो जाओगे।

हँस कर सुखदेव ने कहा,—"यार! तुम किस भ्रम में पड़े हो? वे सब बातें तय हो गयीं। उन

को चिन्ता न करो। भगवान् की दया से, उस खतरानी की मा हाथ में आ गयी। कष्ट तो बहुत हुआ; किन्तु परिश्रम व्यर्थ नहीं गया। अब तो वह भी मेरे ही साथ रहती है। उस ने पुलिस में कह दिया,—"मेरी बिटिया किसीके साथ नहीं गयी थी। बिना कहे स्नान करने चली गयी थी। मुझे भ्रम हो गया था कि, कहीं भाग गयी है।" बस, अब सब बखेड़ा मिट गया। अब तो चैनसे दिन काट रहे हैं। तुम मेरे साथ चलो। और नहीं तो दो चार दिनके बाद चले आना।,

मैंने पूछा कि तुम कहाँ हो। उसने कहा कि मैं आजकल कानपुर में हूँ। एक ज़रूरी काम से यहाँ चला आया था। आज रातकी गाड़ी में कानपुर जाऊँगा। तुम भी मेरे साथ चलो।

कोई दूसरा उपाय न देख, मैं भी राज़ी हो गया। मैं सुखदेवके साथ कानपुर रवानः हुआ। किन्तु अच्छा होता, यदि, उसकी बातों में पड़कर, मैं कानपुर नहीं जाता।
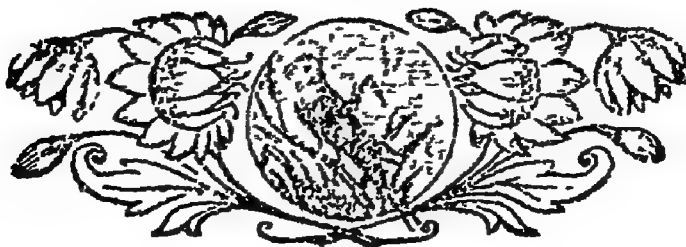
चौथा परिच्छेद।

सुखदेव के घरका ठाट-बाट देखकर, मेरी बुद्धि चकरा गयी। घर भली भाँति से सजा सजाया था। दास दासियों की संख्या यथेष्ट थी। कोठी के हाते में, एक सुन्दर उद्यान था। एक कमरा सरस्वती-भवनके नाम से विख्यात था। उस में, तीन चार आलमारियों में पुस्तकें भरी हुई थीं। कमरे के बीच में, एक सुन्दर टेब्ल था जिस पर दो चार पुस्तकें, कई समाचार-पत्र तथा कुछ हस्तलिपियाँ रक्खी हुई थीं।

यहाँ आये मुझे दो तीन दिन हो गये। सब बातों का मुझे यहाँ सुख था; किन्तु अन्तरात्मा सदा यही कहा करता था कि, यहाँ आकर मैंने अच्छा नहीं किया। शारीरिक सुख तो था, किन्तु मुझे यहाँ मानसिक क्लेश बहुत हुआ करता था। यहाँ, प्रायः मुझे अपने कलकत्तेके घरका ध्यान हो आता था; जिससे ईर्ष्याग्नि हृदय में लहक उठती थी और नाना प्रकारकी चिन्ताएँ मुझे धर दबाती थीं। मुझे प्रसन्न रखने का सुखदेव यत्न यथेष्ट करता था, किन्तु उसकी रहन सहन मुझे पसन्द नहीं आती थी। आत्म-प्रशंसा ही में, वह सदा व्यस्त रहता था। आध्यात्मिक उन्नति की ओर, वह भूल कर

भी ध्यान नहीं देता था। परन्तु एक बात अवश्य कहूँगा कि, वह अपना कुछ समय साहित्य-सेवा में नित्य बिताता था।

एक दिन तीसरे पहर को, मैं सुखदेव की लाईब्रेरी में बैठा उससे बातें कर रहा था। बात ही बात में, सुखदेव ने कहा, "आज तीन बरस से मैं यहीं रहता हूँ। मेरे किसी व्यवहार से असन्तुष्ट होकर, मेरे पिता ने मुझे घर से निकाल दिया, तब से मैं यहीं रहता हूँ। यहाँ मुझ को किसी बातका दुःख नहीं है।" किन्तु मुझे ज्ञात हुआ कि, जैसा वह बाहर से सुखी है वैसा वह भीतर से सुखी कभी नहीं है।

इधर उधर की बातों के बाद सुखदेव ने कहा कि, मैं अनेक ग्रन्थों का रचयिता हो गया हूँ। मैंने पूछा कि किस विषय की पुस्तकें तुम ने लिखी हैं। उस ने उत्तर दिया कि मैं प्रायः उपन्यास ही लिखता हूँ; किन्तु एक दो अन्य पुस्तकों का अनुवाद भी मैंने किया है। ऐसा कह, उस ने मुझे अपना एक उपन्यास दिखाया। मैंने कहा, कुछ अँश ज़रा सुनाओ तो। वह अपनी पुस्तक पढ़ने लगा। भूमिका तो बड़े ठाट की थी। किन्तु पुस्तक को सुनने से, मुझे ऐसा ज्ञात हुआ कि, पुस्तक का कथा-भाग मानों मैंने कहीं पढ़ा हो। पूछने पर, पहले तो सुखदेव ने बात टाल दी;

किन्तु बहुत दिक़ करने पर उस ने कहा कि बात तो ठीक है। पर इसमें तुम्हें इतना आश्चर्य्य ही क्या है? साधारणत:, आज काल तो उपन्यास इसी ढँग से लिखे ही जाते है। मैंने तो एक साधारण लेखक की छाया ली है। लोग तो ऐसे हैं, जो बङ्किम आदि प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकों का अविकल अनुवाद करके भी स्वतन्त्र ही लेखक गिने जाते हैं। अपने ग्रन्थोंमें लोग यह स्वीकार करनेका कष्ट नहीं लेते हैं, कि अमुक ग्रन्थकार की अमुक पुस्तक के आधार पर उन लोगोंने लिखा है वा अमुक पुस्तक का अनुवाद किया है। बात खुल जाने पर कह बैठते हैं कि संयोग से भाव टकरा गया है। आगे तो हमने इस पुस्तक को नहीं देखा था।

यार! तुमने तो इसे पहचान लिया। किन्तु बहुत थोड़े ऐसे निकलेंगे जो इसे पहचान सकें। यही क्यों, मैं तो समालोचकों की आँखोंमें भी धूल डाल देता हूं।

मैं०—सो क्या?

सुखदेव—इस ढँग की यह मेरी पहली पुस्तक नहीं है। इसी ढँगकी और कई पुस्तकोंको मैंने प्रकाशित किया है और कितने ही समालोचकोंने मेरी पूरी पूरी प्रशंसा की है। इसका भेद तुम क्या जानोगे? इसे भी मैं विविध पत्रों में समालोचना के लिये भेजूंगा।

मैं०—ऐसे तुम जो कहो, किन्तु आज तक तो ग्रन्थ कर्त्ताओं को मैं बड़ी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखता था। मेरे जानते तो ग्रन्थकार की उपाधि नरेश की उपाधि से भी बड़ी है। देखो, यदि ग्रन्थकार नहीं होते ; तो आज प्राचीनकालके राजा महाराजाओं को भी कोई न जानता। अमरत्व पद को प्राप्त करनेका उपाय, ग्रन्थ-रचना के अतिरिक्त दूसरा नहीं है। किन्तु खेद के साथ मुझे कहना पड़ता है कि, ऐसे पवित्र कार्य्य को तुम इस प्रकार क्यों कलुषित करते हो ? दूसरे के उच्च विचारोंको अपनी पुस्तकोंमें समावेश करना कुछ अनुचित नहीं है ; किन्तु इस कार्य्य को इस प्रकार से करना चाहिये कि सब पर विदित हो जाय। छिपाने की चेष्टा कर, सर्व साधारण को धोखा देना कदापि अच्छा नहीं है, तुम्हारी करनी देख कर, "सोरोज ऑफ सेटन"की बहुत सी बातें मुझे याद आ गयीं।

सुखदेव—तुम बड़े बड़े उदार कवियों और लेखकों की बातें कहते हो, जो अपनी रचना द्वारा अपने देश, समाज तथा पाठकोंके विचार तथा रुचिको महत् एवम् उच्च बनाने की चेष्टा करते हैं। किन्तु अभी तक तो मैं, यथार्थ में, ग्रन्थ-कर्त्ता नहीं हुआ। मैं प्रकाशकोंके लिये, अर्थ लोभ से, जो जब मन में आता है

लिख मारता हूँ। मेरी रुचि स्वतन्त्र नहीं है। अल्प दाम पाकर, प्रकाशकों की आज्ञानुसार, मैं प्रबन्धों को लिखा करता हूँ। मैं भली भाँति जानता हूँ कि इस से मेरी उन्नति नहीं हो सकती; किन्तु क्या करूँ लाचारी है। उत्तम ग्रन्थों के लिखने में बहुत परिश्रम उठाना पड़ता है। भावों को सग्रह करने में समय बहुत लगता है। उच्च श्रेणी की भाषा लिखने में माथे की गुद्दी गलानी पड़ती है। किन्तु मैं तो मास में एक दो पुस्तक निकाल सकता हूँ। मेरा उद्देश्य नाम कमाने का तथा धन प्राप्त करने का और दूसरोंका मुँह जोहने का है।

मैं—अच्छा, यह तो हुआ। किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि समालोचक तुम्हारी पुस्तकों की अच्छी समालोचना क्योंकर कर देते हैं।

सुखदेव—इसका भेद यह है कि अभी तक हिन्दी भाषा में यथार्थ समालोचना की प्रथा नहीं चली। जो समालोचना तुम प्रायः देखते हो, वह विज्ञापन मात्र है। समालोचना करना सहज नहीं है। यहाँ तो समालोचक लोग, पन्द्रह मिनिट में, बीस किताबों की समालोचना कर देते हैं। भला, ऐसी अवस्था में पुस्तकोंके यथार्थ गुण दोषों को वे लोग क्योंकर आलोचना कर सकते हैं? इसके अतिरिक्त बहुत कम ऐसे समा-

लोचक हैं जो निष्पक्ष भाव से किसी की पुस्तककी आलोचना करते हों। समालोचना करते समय, प्रायः पुस्तककी ओर ध्यान न देकर, लोग व्यक्ति विशेष ही की आलोचना करने लगते हैं। जैसे आजकल सब जगह सिफ़ारिशकी दाल गलती है; उसी प्रकार समालोचना के क्षेत्र में भी समझ लो कि सिफ़ारिश ही का डङ्का बजता है। प्रायः लोग मुँह देखी समालोचना किया करते हैं। इसमें केवल एक ही श्रेणीके मनुष्योंका दोष नहीं है; वरन् कुछ न कुछ सभी दोषी हैं। अच्छी शिक्षा पाये हुए, स्वतन्त्र, समालोचक यहाँ नहीं पाये जाते। समालोचना किसी का व्यवसाय नहीं है। सम्पादक लोग ही प्रायः समालोचना किया करते हैं। अक्सर उन्हें अपने स्वामी की रुचिके अनुसार भी कुछ काम करना पड़ता है। इधर अच्छा वेतन नहीं पाने के कारण, उच्च शिक्षा पाये हुए प्रतिभाशाली व्यक्ति सम्पादक के पद को सुशोभित नहीं करते। अपने में पूर्ण शक्ति नहीं रहने के कारण, इन लोगों को अपनी बातोंके समर्थन के लिये दूसरों का मुँह जोहना पड़ता है। अतएव जो दो एक अच्छे सम्पादक हैं उन्हीं की आलोचना का अनुकरण करने को दूसरे लोग भी वाधित होते हैं। बस, मुखिया जो कहते हैं उन्हींके मुँह में और लोग भी मुँह मिलाने लगते हैं।

इसका जो परिणाम होता है वह तो प्रत्यक्ष ही है। किन्तु इससे मुझ को क्या? मैं तो अपना काम कर चुका। मुझे तो सफलता प्राप्त हो चुकी। लोग मुझे लेखक जान चुके। अब तो सब पत्रों में मेरा नाम निकला करता है। देखना, थोड़े दिनों में क्या कर बैठता हूँ।

मैं०—क्या तुम समझते हो कि हिन्दी-साहित्य में तुम्हारा नाम अचल रहेगा?

सुखदेव०—ऐसा नहीं है। किन्तु आज तो नाम कमा चुके। ग्रन्थ-कर्त्ताओं की सूची में अपना नाम लिखा चुके।

मैं—अच्छा! इससे मुझे क्या? इस विषयपर तर्क वितर्क कर, मैं तुम्हें रुष्ट करना नहीं चाहता। किन्तु यह तो कहो, कि किस उद्देश्य से तुम ने यह पुस्तक लिखी है?

सुखदेव—वाह! वाह! उद्देश्य की बात तो तुम ने एक ही कही। भला उपन्यास, नाटक तथा कविता किस उद्देश्य से लिखी जाती हैं। यों कोई विशेष पुस्तक किसी विशेष उद्देश्य से लिखी गयी हो तो वह दूसरी बात है। किन्तु साधारणत: इस श्रेणी की पुस्तकें पाठकों के चित्त-विनोदार्थ ही लिखी जाती हैं। नहीं तो कहो, भला प्रफुल्लला किस उद्देश्य से लिखी

गयी थी ? "कपाल कुण्डला, रोमियो जूलियट," "ऐज़ यू लाइक इट" आदि ग्रन्थों की रचना का क्या उद्देश्य था ? इन पुस्तकों के लिखने का यही उद्देश्य है कि पाठकों को आनन्द मिले, अच्छे कामों की ओर उनकी प्रवृत्ति हो और बुरों से अरुचि एवम् घृणा हो। तुम्हारे प्रश्न से साफ़ विदित होता है कि तुम मुझे अल्पज्ञ समझ कर, मुझ से ठट्ठा करते हो। नहीं तो किसी सुलेखक से तुम ऐसा प्रश्न कदापि नहीं कर सकते। किन्तु मुझे इसका कुछ दुःख नहीं है।

मैं—यदि मेरी बातें तुम्हें बुरी लगी हों तो मुझे क्षमा करना। किन्तु यह तो कहो, कि तुम उच्चश्रेणी की उपयोगी पुस्तकों की रचना क्यों नहीं करते ?

सुखदेव—इसका कारण यह है, कि उत्तम ग्रन्थों के आजकल ग्राहक ही कम हैं और जब तक ग्राहक नहीं मिलते गुणी का मन नहीं बढ़ता। जब तक दिन रात मनुष्य एक ही काम का अभ्यास नहीं करता, उस काम में उस की बुद्धि का विकास नहीं होता। अभ्यास करते करते, साधारण मनुष्य भी उत्तम लेखक वा कवि हो जा सकता है। किन्तु अभ्यास के लिये, साहित्य ही को उसे अपना व्यवसाय बना लेना पड़ेगा। किन्तु आजकल अपने देश की जैसी दुरावस्था है कोई पूर्ण शिक्षित व्यक्ति साहित्य-सेवा को अपना व्यवसाय

नहीं बना सकता; क्योंकि यह क्षेत्र उपजाऊ नहीं है। अतएव यह काम कर, कोई अपनी जीविका निर्वाह नहीं कर सकता। तब रही आमोद की बात, सो तुम जानते हो कि जो काम केवल आमोद ही के लिये किया जाता है, जिस कार्य्य का कोई उच्च लक्ष्य नहीं होता, वह कदापि वैसा उत्तम नहीं हो सकता। यों तो सब नियमों का अपवाद होता है। अतएव दो चार उच्चकक्षा के शिक्षा-प्राप्त, उदार, स्वार्थरहित व्यक्ति केवल अपना कर्त्तव्य एवम् धर्म ही समझ कर साहित्यकी सेवा करते हैं और साहित्य-सम्राट के पद पाने के योग्य हो जाते हैं।

मैं—भाई सुखदेव! आज मैं तुम्हारी बातों से बहुत प्रसन्न हुआ। साहित्य सम्बन्धी इतने विषयों को मैं नहीं जानता था। क्योंकि आजतक मेरी प्रवृत्ति पठन-पाठन की ओर नहीं हुई। तुम्हारी बातें सुन कर, अब मेरी भी इच्छा होती है कि कुछ साहित्य की सेवा करूँ। जो हो, किन्तु यह तो कहो कि इतना ज्ञान और बुद्धि रख कर, तुम बुरे मार्ग पर क्यों चलते हो? घर द्वार छोड़कर, एक रमणी के संग, अनुचित भोग विलास में, तुम अपना अमूल्य समय क्यों नष्ट कर रहे हो?

सुखदेव—कहने और करने में बहुत अन्तर है।

इसे मैं बुरा काम समझता हूँ। किन्तु इसे मैं छोड़ नहीं सकता। इच्छा करने पर भी, इस से छुटकारा पाना अब मेरे लिये कठिन है। इस के अनेक कारण हैं। कहाँ तक तुमसे कहूँ ?

मैं—तुम्हारी आज की बातें सुन, तुम्हारी ओर मेरी श्रद्धा बढ़ गयी है; इसी से मैंने इतना कह दिया, नहीं तो इस की कोई आवश्यकता नहीं थी। किन्तु बात में फँस कर, हमलोगोंने समय की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। देखो न सूर्य्यास्त हो चला।

सुखदेव—इस का भेद तुम से फिर कभी कहूँगा। चलो, आज तुम्हें कम्पनी बाग दिखा लाऊँ।

पाँचवाँ परिच्छेद।
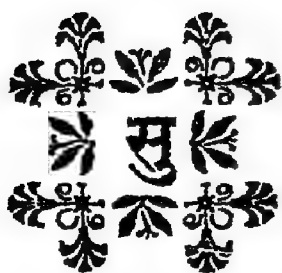
सुखदेव के साथ रहते आज मुझे तीन मास बीत गये। इस बीच में, कई बार मेरी इच्छा यहाँ से चले जाने को हुई, किन्तु उस ने जाने नहीं दिया। मन में रह रह कर आता था, कि जब इसी प्रकार समय व्यतीत करना है तब घर छोड़ कर मैं बाहर ही क्यों

आया। जब एक बार घर का बखेड़ा मैं ने छोड़ दिया, तो फिर यहाँ झंझट में क्यों फँसा हूँ।

कभी कभी मेरी प्रबल इच्छा होती थी, कि मैं धर्म की ओर अपना ध्यान दूँ; अपनी आध्यात्मिक उन्नति करूँ। जीवन व्यर्थ जाता हुआ मुझे ज्ञात होता था। कभी कभी मैं ईश्वर से प्रार्थना भी करता था कि जिस में मेरा चञ्चल मन शान्ति लाभ करे। किन्तु कुछ होता नहीं था। दिन पर दिन बीतते चले जाते थे। कुछ स्थिर नहीं कर सकता था कि क्या करूँ।

इस बीच में, दो एक बार मेरी दृष्टि सुखदेव की खतरानी पर पड़ी थी। किन्तु उसे देख कर मेरा हृदय धड़क गया था, मन डर गया था। जिस प्रकार घूर कर वह मेरी ओर देखती थी, उस से मुझे ज्ञात होता था कि उस के मन में कोई कुविचार है। उस का चरित्र तो निन्दनीय था ही; किन्तु यहाँ तो वह सुखदेव की धर्म-पत्नी सी रहती थी, तब उसकी चेष्टा ऐसी क्यों हुई। रूप तो उसे बहुत था, किन्तु मुझ पर उस के रूप का प्रभाव नहीं पड़ा; क्योंकि अब मेरी रुचि बुरे कामों से हट गयी थी और मै पाप से भय करता था।

एक दिन आधी रात के समय हर ओर सन्नाटा छा रहा है। कहीं से कोई शब्द नहीं सुनाई देता है।

मेरे कमरे का दीप झिलमिला रहा है। और दिनों से कहीं अधिक, आज, मैं चिन्तित हूँ। इसी से ठीक नींद नहीं आती। लग लग कर आँखें खुल जाती हैं। मैं सोचता था कि उठ कर कहीं बाहर टहलने जाऊँ, कि इसी समय किसी के पैर की आहट मिली। चुप-चाप मैं चारपाई से चिपटा रह गया। थोड़ी देर में एक द्वार खुला। द्वार भीतर से बन्द नहीं था। सोये सोये, मैं ने देखा कि एक रमणी धीरे धीरे मेरे समीप बढ़ रही है। मुझे भय और सन्देह ने धर दवाया। सोचने लगा कि बात क्या है? यह कामिनी कौन है? उस का चेहरा मैं स्पष्ट रूप से देख नहीं सका। इसी से पहचानने में मुझे कठिनता हुई। थोड़ी ही देर में, वह मेरी खाट के निकट पहुँच गयी और दीप-ज्योति उसके आनन पर पड़ी। उसे देख कर मैं चिहुँक उठा। मेरा कलेजा धड़कने लगा। कुछ क्षण तक ठीक नहीं कर सका कि क्या करूँ। भला क्या मुझे स्वप्न में भी यह ध्यान था, कि इस निस्तब्ध निशा में सुखदेव की खतरानी को मैं अपनी चारपाई के पास देखूँगा।

वह मेरे निकट आकर चुप खड़ी हो गयी और ध्यान पूर्वक मेरी ओर देखने लगी।

उस के रूप, रङ्ग, सौन्दर्य तथा शृङ्गार को देख कर, मेरा मन एकबार तो विचलित हुआ; किन्तु भगवान् की

असीम कृपा से, मैं ने तुरत अपने को सम्हाल लिया। मैं ने सोचा कि इस अवस्था में यदि हम दोनों को कोई देख लेगा तो क्या समझेगा। इस के अतिरिक्त, मेरे मन में यह आया कि, जहाँ तक जल्द हो सके, जान लेना चाहिये कि किस अभिप्राय से यह यहाँ आयी है। ऐसा मन में आते ही, मैं खाट पर उठ बैठा और बोल उठा कि आप इस समय यहाँ क्यों आयी हैं? कुशल तो है न? संकोच छोड़ कर, उसने कहा कि आप के दर्शन से कुशल के अतिरिक्त और क्या होगा! किन्तु मुझे दुःख इसी बात का है कि आज तक आप के सदृश मैं ने कोई दूसरा निष्ठुर पुरुष नहीं देखा।

मैं—तुम्हारा भाव मेरी समझ में नहीं आता। अपने आने का कारण तुम शीघ्र कहो।

खतरानी—अधिक क्या कहूँ? हाय! स्त्रियों के सदृश पुरुषों का मन कदापि नहीं होता। आप नहीं जानते कि, जिस दिनसे प्रथम बार मैं ने आपको, अपने काशीवाले मकान में, देखा, उसी दिन से, आप से मिलने के लिये, मैं कितनी व्याकुल हो रही हूँ। जब मैं ने सुना कि आप यहाँ आये हैं और कुछ दिन यहीं रहियेगा, तब मैंने समझा कि मेरा सौभाग्य उदय हुआ। मेरे मन में दृढ़ विश्वास हो गया कि आप मेरे ही लिये यहाँ आये हैं।

मैं सहम गया। मुझ से कुछ उत्तर देते न बना। मै ठीक न कर सका कि इस का क्या उत्तर दूँ। वह कहने लगी कि कोई दूसरा उपाय न देख, आप के मित्र को बेसुध खाट पर सोते छोड़कर, मैं यहाँ चली आई हूँ। आप को स्वच्छन्द अकेले में देख कर, मेरे चिर-सन्तप्त मन को बहुत शान्ति मिली है।

मैं०—तुम यह व्यर्थ की बातें क्यों बक रही हो? देखो, सुखदेव मेरा मित्र है। तुम्हें उस ने धर्म रूप से ग्रहण किया है। मुझे उचित है कि मैं तुम्हारा आदर करूँ। स्त्रियों के लिये सतीत्व-धर्म से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है। अविवाहित अवस्था में, सुखदेव ने तुम्हें अपनाया है। जाति भेद होने पर भी, एक प्रकार से, तुम उस की स्त्री ही हो। तुम्हें कदापि उचित नहीं है कि, भूल कर भी, किसी दूसरे पुरुष की ओर देखो।

खतरानी०—आप के निकट मै धर्म की शिक्षा लेने नहीं आयी हूँ। आप मुझे प्रेम की शिक्षा दीजिये। आप पर मैं अपना प्राण न्योछावर कर चुकी हूँ।

मैं०—प्रेम जैसे पवित्र शब्द का तुम ऐसा कुव्यवहार क्यों करती हो? प्रेम एक पवित्र वस्तु है। इसे कलुषित न करो। तुम यहाँ से चली जाओ। यदि कोई तुम्हें इस अवस्था में देखेगा तो क्या कहेगा? अपने को क्यों व्यर्थ सङ्कट मे डालती हो?

खतरानी०—किसी के कुछ कहने सुनने का मुझे भय नहीं है। मैं सुख चाहती हूँ। सुख ही मेरा आराध्य देवता है। तुम्हारे निकट मुझे सुख होता है, इसीलिये यहाँ से अब जा नहीं सकती। तुम भय क्यों करते हो? मेरे साथ रह कर, तुम भी सुख से अपना जीवन निर्वाह करो।

मैं०—तुम अभी कमसिन हो। संसार का तुम्हें अनुभव नहीं है; इसी से ऐसा कहती हो। सुख शब्द उच्चारण करना जितना सहज है, उसे अनुभव करना उतना सहज नहीं है। पांप के द्वारा कोई कभी सुखी नहीं हो सकता। शारीरिक सुख, सुख नहीं है। सुख का सम्बन्ध केवल मन के साथ, धर्म के साथ और आत्मा के साथ है। जिसे आज तुम सुख की सामग्री समझती हो, चार दिन के बाद, वही तुम्हें दारुण यन्त्रणा देने लगेगा। धर्म पर दृढ़ रहो। अपनी कुवासना को परित्याग करो। मैं तुमसे फिर अनुरोध करता हूँ, कि यदि अपना तथा मेरा मङ्गल चाहती हो तो यहाँ से अभी चली जाओ; नहीं तो व्यर्थ विपत्ति में पड़ोगी। अभी समय है, कुछ बिगड़ा नहीं है।

खतरानी०—मैं अभी तक तुम्हें इतना मूर्ख नहीं समझती थी। बारम्बार धर्मकी दुहाई क्यों दे रहे हो? धर्म क्या वस्तु है, ज़रा विचार कर देखो तो। लोग तो

यही न कहते है कि, यदि मनुष्य इस लोक में धर्म की राह पर चल कर अपनी वासना को रोकेगा ; इस लोक में कष्ट को कष्ट न अनुभव कर, अपनी इच्छा को दमन करेगा ; तो परलोक में वह सुखी होगा। जो यहाँ त्याग करेगा, वह उस लोकमें बिना परिश्रम के संग्रह करेगा। लक्ष्य वही सुख रहा। बात यह ठह-री, कि मैं यहीं सुखी होना चाहती हूँ अथवा परलोक में। यों तो परलोक की बातें सभी कहते है ; किन्तु वहाँ का यथार्थ सम्वाद किस ने दिया और कौन दे सकता है ? अतएव मै समझती हूँ, कि निश्चित को छोड़ कर अनिश्चित के पीछे दौडना कदापि बुद्धिमत्ता नहीं है। आगे की आशा पर, सामने के पदार्थ को लात मारना मूर्खता मात्र है। बस, मैं अपने हाथ के चांद को छोड नहीं सकती। यहीं के, इसी लोकके सुख को मै सुख मानती हूँ। तुम मुझे ज्ञान न सि-खाओ। मै तुम्हारा स्नेह चाहती हूँ, तुम्हारे प्रणय की प्यासी हूँ। मुझे निराशा के जलधि में निमग्न मत करो। मुझे ग्रहण करो। तुम्हारे परित्याग को मैं कदापि सह न सकूँगी। तुम मेरी रक्षा करो।

मै—तुम उतावली सी बातें क्यों करती हो ? यह तुम्हारा तर्क कुतर्क मात्र है। तुम्हारी बुद्धि भ्रम में पड़ी है। स्त्री-धर्म का प्रतिपालन करो। मै तुम्हें

धोखा कदापि नहीं दे सकता। मै बहुत पापी हूँ, किन्तु तुम्हें पापके पथ पर अग्रसर होने में सहायता देकर, मै अपने पापके बोझको नहीं बढ़ाऊँगा। तुम्हारा यहाँ ठहरना कदापि उचित नहीं है। जो तुम कर चुकी हो वही बहुत है। अब अपने को अधिक कुक-र्मों में न फँसाओ। लोक-लज्जाका भय करो। पर-मेश्वर से डरो।

खतरानी०—देखो, तुम मेरा निरादर कर रहे हो। किन्तु इसका फल तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा। यदि आज तुम मेरी बात न मानोगे, तो मैं तुम्हारी जान की ग्राहक हो जाऊँगी।

मै०—मुझे व्यर्थ क्यों धमका रही हो? तुम्हारी बातोंका प्रभाव मुझ पर पड़ नहीं सकता। मैंने दुनि-या को बहुत देखा है। तुम्हारे भुलावे में, मैं नहीं पड़ सकता। मैं अपने संकल्प पर दृढ़ रहूँगा। मुझे तुम कदापि विचलित नहीं कर सकतीं। हाँ, आज से कुछ दिन पहले, जो मुझ से तुम्हारी भेंट हुई रहती तो दूसरी बात थी। तुम यहाँ से शीघ्र हट जाओ; नहीं तो तुम सङ्कट में अवश्य पड़ जावोगी। अथवा तुम्हारा घर छोड़, अभी मैं कहीं चला जाऊँगा।

खतरानी०—जानेका नाम न लो। तुम्हें यहीं रहना होगा और मेरे कहे अनुसार तुम्हें चलना

होगा। मैंने ठीक कर लिया है कि तुम्हें अपनाऊँगी, तुम मुझे इस राह से विचलित कदापि नही कर सकते। देखो, तुम से बार बार सादर विनती करती हूँ। तुम मुझे अपने निकट से न हटाओ। इस सुन-सान सुहावनी निशा में, मेरी मनोकामना पूर्ण करो। मनुष्य-तन इसी सुखके लिये प्राप्त हुआ है। मुझे लोग सदा अनुपम सुन्दरी कहा करते हैं। किन्तु देखती हूँ कि, मेरे सौन्दर्य्यका प्रभाव तुम पर तनिक भी नहीं पड़ता। रात व्यर्थ की बातों में बीती जा रही है। कौन कह सकता है कि फिर ऐसा सुयोग हाथ आवेगा ? ऐसा सुअवसर बड़े भाग्य से मिलता है। आज तुम मुझे परित्याग न करो। मेरी ओर कृपा कर देखो। आज कितने दिनों से, मैं तुम्हारे लिये कितना कष्ट भोग रही हूँ ?

यह कहती हुई, खतरानी मेरे चरणों से लिपट गयी। मैं व्याकुल हो गया। कुछ स्थिर नहीं कर सका कि क्या करूँ। मुझसे उसे अपने निकट से हटा-ते न बना। साथ ही साथ यह भी भय होने लगा कि, यदि इस समय यहाँ सुखदेव आजाय, तो वह क्या कहेगा।

मैं कुछ देर तक इसी विचार में डूबा रहा। खत-रानी सुन्दरी मेरे पैरोंके पास बैठी थी। उसका रूप,

रङ्ग, भेष भूषा अत्यन्त सुन्दर था। हर ओर निस्तब्धता अटल राज्य कर रही थी। कहीं से कोई शब्द सुनाई नहीं देता था। इसी समय निकटस्थ वृक्षसे उलूक अपने अशुभ सूचक कर्कश रव से बोल उठा। मेरा शरीर काँप उठा। मैंने समझा कि, अब बुरी घड़ी आ रही है। यदि यह रमणी कुछ देर तक और यहाँ ठहर गयी तो हम दोनों का अनिष्ट अवश्य होगा।

निस्तब्धता को भङ्ग करती हुई खतरानी ने अपनी मीठी बोली में कहा, "हा! मैं नहीं जानती थी कि तुम इतने निष्ठुर हो! तुम्हारा हृदय पत्थर का बना हुआ है! कौन कह सकता है कि, तुम रक्त माँस के बने मनुष्य हो? कौन कह सकता है कि, सुख को अनुभव करने की तुम में शक्ति है? अमृत को गरल समझ कर तुम क्यों अनादर करते हो? मणि को पाषाण समझ कर, तुम क्यों परित्याग करते हो? पुष्प को कण्टक के भ्रम से क्यों फेंकते हो? अब भी मेरी बात मान लो। मुझ से घृणा न करो। आजन्म, मैं तुम्हारी दासी बनी रहूँगी। आज अपने को मैं तुम्हें समर्पण करती हूँ। तुम मुझे अङ्गीकार करो। तुम्हें छोड़ अब मेरी दूसरी गति नहीं है। मेरी गति अब कौन रोक सकता है? एक बार जब नदी सागर की ओर प्रधावित होती है, तब फिर उस की गति कौन फेर

सकता है? तुम जो चाहो सो करो। तुम्हारी घृणा, तिरस्कार, व्यङ्ग तथा धमकी का भय मैं नहीं करती। प्यारे! आओ, एक बार तुम्हें गले से लगा कर, मैं अपने हृदय के तापको बुझाऊँ।

ऐसा कह कर, वह मेरे गले से लिपट गयी। मुझ से कुछ कहते बन न आया। किन्तु ठीक उसी समय सामने का द्वार खुल गया और हाथ में कटारी लिये सुखदेव घर में घुस आया।

उसे देखते ही, मैं मारे भयके काँपने लगा। उस की कान्ति क्रोधसे विकृत हो गयी थी। चेहरा तम-तमा रहा था। अमानुषी छटा उसके आनन पर छिटक रही थी। उसे आते देख कर, खतरानी की क्या दशा हुई सो मैं कह नहीं सकता। उस के मन में किस भावका उदय हुआ, यह उल्लेख मुझसे किया नहीं जा सकता। किन्तु वह अपने स्थान से हटी नहीं। वरन् मेरी गर्दन उसने और ज़ोर से दबाई।

"क्यों रे पापिष्ठा! यहाँ क्या कर रही है? ले आज तेरी करनी का तुझे फल चखाता हूँ।" यह कहता हुआ सुखदेव इस प्रकार खतरानी पर टूट पड़ा; जिस प्रकार अपने शिकार पर बाज़ टूटता है। मुझ में ऐसा साहस नहीं हुआ, कि कुछ कह सकूँ। देखते देखते सुख-देव की कटारी खतरानी के कलेजे में प्रवेश कर गयी।

खून का फ़व्वारा निकल पड़ा। मेरा सारा शरीर रुधिर में डूब गया। बे-सुध, बिछौने पर गिरकर खतरानी छटपटाने लगी। आगे बिना कुछ कहे, सुख-देव पागल सा वहाँ से भाग गया। कुछ देर तक, मैं ज्यों का त्यों वहीं बैठा रह गया। मेरी आँखोंके सामने खून हुआ। घायल खतरानी मेरे नेत्रोंके सामने मरण-वेदना सह रही है। अपराधी भाग गया। मुझसे कुछ करते बन न पड़ा। एक बार मनमें आया कि किसी को पुकारूँ। फिर सोचा, कि कहीं लोग मुझी पर सन्देह न करें। इसी उधेड़बुन में, मैं बहुत देर तक पड़ा रहा। अन्त में, कोई दूसरा उपाय न देख कर, मैं भी घर से निकल पड़ा।

रात अँधेरी थी। आकाश में कुछ बादल छा गये थे। अपने को एक बार राज-पथ पर देख कर, मैं ज़ोर से भागने लगा। किन्तु ठीक नहीं कर सका कि कहाँ जा रहा हूँ।

छठा परिच्छेद।

जब मैं सुखदेव के घर से बाहर हुआ उस समय मेरी मानसिक अवस्था कैसी थी, इस का उल्लेख इस समय करना दुस्साध्य है। कभी घरके सुख का ध्यान आता। कभी अपने कुकर्म्मों पर अनुताप होता। कभी सुखदेव पर क्रोध होता। कभी अपने को धिक्कारता कि मैं सुखदेव के घर क्यों आया। कभी मन में आता, कि खतरानी ने अपने कुकर्मों का समुचित दण्ड पाया। कभी सोचता, कि उसके घरमें आते ही मैं वहाँ से हट क्यों न गया। कभी भय होता, कि इस अपराध में कहीं मैं ही न पकड़ा जाउँ।

इसी सोच विचार में, मैं प्राण छोड़ कर भागता चला जा रहा था। आधी रात से रात ढल गयी थी। क्रमश: आकाश में बादल घिर रहे थे। देखते देखते घोर घटा छा गयी। आस्मान में तारे लुप्त हो गये। चारों ओर घोर अन्धकार छा गया। हाथ को हाथ न सूझता था। रह रह कर बिजली चमकने लगी। पवन का वेग बढ़ा। क्रमश: वृष्टि आरम्भ हुई। एक दो तीन बूँद गिरीं। फिर बूँद पर बूँद गिरने लगीं।

अन्तमें प्रबल वेग से वृष्टि होने लगी। भूगर्भ को कँपाने वाला मेघनाद बारम्बार होने लगा। बादलों की तड़प से कलेजा काँपने लगा। निस्सहाय, मैं मैदान में पड़ा था। भागने को कहीं ठौर नहीं। ठहरने को स्थान नहीं। आश्रय लेने को एक झोंपड़ी भी नहीं, किन्तु करता क्या? अब पथ भी नहीं सूझता था। यह भी नहीं ज्ञात होता था कि मैं कहाँ जा रहा हूँ? घटनास्थल से कितनी दूर निकल आया हूँ?

कुछ दूर और आगे बढ़ने पर, दामिनी के प्रकाश से, विदित हुआ कि सामने एक बट का वृक्ष है। बिना कुछ सोचे विचारे, आगे बढ़कर, मैं उसी के आश्रय में ठहर गया।

हर ओर विस्तर मैदान है। कहीं और कुछ नहीं है। इस निर्जन स्थान में,निराश्रय,मैं अकेला पड़ा हूँ। हाय! हाय! मेरा धन जन, मेरे दास दासी आज क्या हुए! मेरा प्रासाद मित्र बन्धु क्या हुए! ऊपर से अटूट जल गिर रहा था। प्रबल वेग से सनसनाती हुई हवा बह रही थी। ज्ञात होता था कि प्रलय आज ही है। शत धाराओं से जल बट-वृक्ष को चारों ओर दौड़ रहा था। मैं एक वृक्षकी जड़ पर, जड़ पदार्थ सा बैठा था। वृक्ष की शाखाओं से पानी टपक रहा था। वृक्ष पर असंख्य जुगनू चमक रहे थे।

निराश होकर, मैंने कहा,—"हाय ! भगवान् ! यह किस पाप का फल मैं भोग रहा हूँ ?" भगवान् का नाम याद आते ही, मेरे रोंगटे खड़े हो गये। कलेजा धड़क गया। ज्ञात हुआ, अन्तःकरण में आग धधक रही है। मारे भय के, मैं थर थर काँपता था। एक बार मन में आया, कि इतना जल भी मेरे हृदयताप को बुझा नहीं सकता ?

मैंने फिर कहा, "भगवान्, मेरी रक्षा करो, अब मेरा कोई दूसरा सहारा नहीं है। अनेक पाप किये ; कभी तुमसे प्रार्थना न की। तुम को जानने को, तुम पर विश्वास लाने को, तुम्हें अपनाने को, मैं ने कभी चेष्टा न की। किन्तु सुनता हूँ, कि तुम में क्षमा बहुत है। एक बार इच्छा प्रगट करने ही से, तुम मनुष्य को अपनाते हो। अब मेरे सहाय तुम्हीं हो। आज मेरी रक्षा करो।"

इसी समय ज्ञात हुआ, कि किसी का कर-स्पर्श मेरी पीठ के साथ हुआ। मैं चिहुँक गया ; किन्तु कुछ देख नहीं सका। मुझ में इतनी शक्ति न रही, कि हिल डोल सकूँ।

एक मधुर गम्भीर स्वर मेरे कानों में पड़ा। किसी ने कहा,—"वत्स ! व्याकुल न होना। दुःख सुख संसार का नियम है। तुम भय न करो। सब दिन

समान नहीं बीतते। धैर्य पर भार देकर, सब कामों को यथा समय करो। भगवान् पर भरोसा रक्खो। तुम्हारा भला होगा। समय आने पर, मैं तुम से फिर मिलूँगा।"

मैंने पूछा, "आप कौन हैं?" कोई उत्तर नहीं मिला। व्याकुल होकर, पीछे फिरकर मैंने देखा; किन्तु कुछ दीख न पड़ा। हर ओर निस्तब्धता और अन्धकार राज्य कर रहा था। मैंने फिर पुकारा, किन्तु कुछ जवाब न मिला। घबरा कर, मैं खड़ा हो गया। इसी बीच दामिनी दमक उठी। चारों ओर प्रकाश फैल गया। आँखें गढ़ा कर मैंने देखा, कहीं कुछ नहीं। वही जल का प्रवाह। प्रकाश के पश्चात अन्धकार अधिक भयप्रद और दुःखद प्रतीत होने लगा।

मैंने सोचा कि यह कैसी आश्चर्य घटना है! इस समय यहाँ कौन आया? और आया तो चला क्यों गया? क्या किसी देवताने दर्शन दिये? वा मेरा भ्रम मात्र था।

इसी तर्क वितर्क में, कुछ काल बीत गया। देखते देखते वृष्टि थम्ही। आकाश में घटा फटी। जिस प्रकार घोर संग्राम के पश्चात् सेना इधर उधर भागती हुई दीख पड़ती है, योद्धाओं की श्रेणी भङ्ग हो जाती है और खेत दर्शकों के सामने पहले की अपेक्षा साफ़

ज्ञात होता है, उसी प्रकार प्रकृति के संग्रामके बाद बादलरूपी योधा इधर उधर हो गये और खेत रूपी आकाश स्वच्छ हो चला। पूर्व दिशा में विजय-पताका सदृश लालिमा एवम् प्रकाश दौड़ आया। ज्ञात हुआ कि प्रभात हो चला है। कालीपर गौरीकी विजय हुई। प्रकाश से अन्धकार परास्त हुआ। दिन देवता ने निशा निशाचरके असलों को पृथिवीसे मार भगाया। ज्ञानालोक ने अविद्या अन्धकारको हटा दिया; किन्तु साथ ही मेरे स्वच्छन्दता सूर्य्य का अस्त हुआ।

बहुत कुछ सोच विचार कर भी, मैं ठीक न कर सका कि क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? अन्त में, बिना विचारे, जिस ओर पैर ले चलने लगे मैं भी चलने लगा। मेरे आधीन मेरे पैर न थे, वरन् अपने पैरोंका आज्ञाकारी हुआ, मैं आगे बढ़ने लगा।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर, आकाश एकदम साफ़ हो गया। चारों ओर धूप निकल आयी। मुझे ज्ञात हुआ, कि नगर से दूर जानेके बदले मैं फिर राह भूल कर नगरके निकट चला आया। यह ध्यान आते ही मेरा कलेजा धड़कने लगा। भय का सञ्चार पूर्ण रूप से हृदय में हो आया। फिर एक पैर भी आगे वा पीछे मैं नहीं दे सका। पीछे विस्तृत वन है, आगे नगर है,सामने पक्का-राज-पथ।

यहीं, कुछ देर तक, मैं यह सोचता खड़ा रहा कि आगे जाऊँ वा पीछे हटूँ। इसी बीच, एक दल मनुष्यों का मेरे सामने से आता हुआ दीख पड़ा। इन्हें देख कर, मैं अधिक डर गया और जान छोड़ कर दौड़ने लगा; किन्तु मेरा यत्न काम न आया। मेरी आँखें तिरमिरा गयीं। जल्दीमें, मैं रास्ता देख न सका, ठोकर खाकर गिर गया और साथ ही साथ मेरी चेतना जाती रही।

सातवाँ परिच्छेद।

चेतन्यता लाभ करने पर, मुझे ज्ञात हुआ कि मैं किसी कोमल शय्यापर पड़ा हुआ हूँ। अधिक ध्यान देनेसे ज्ञात हुआ, कि मैं एक अँधेरी कोठरीमें हूँ और मेरे आस पास और कई लोग पड़े हुए हैं। कोई कराह रहा है, कोई आह मार रहा है। हर ओर से एक विचित्र गन्ध आ रही है। आँखें फाड़ फाड़ कर, मैं चारों ओर देखने लगा; किन्तु कुछ ठीक ज्ञात न हुआ।

धीरे धीरे, मुझे, एक एक कर, सब बातें याद आने लगीं। अब मुझे ज्ञात हुआ, कि बेहोश हो जानेके कारण, पुलिस वालोंने मुझे अस्पताल में रख छोड़ा है और मैं उन लोगांको हिरासत में हूँ। मैं समझ गया, कि उन लोगोंने मुझे हत्यारा समझ कर गिरफ़ार कर लिया है और अब मेरा छुटकारा नहो है।

अपने को इस अवस्था में पाकर, मै घबरा गया। कलेजा धक धक करने लगा। ज्ञात हुआ, कि किसी ने मेरे अन्तःकरणमें अनल धधका दिया है। मेरे रोम-रन्ध्रोंसे चिनगारियाँ छिटकने लगीं। माथे में चक्कर आ गया। मैं घबरा कर उठने लगा; पर उठ न सका। ज्ञात हुआ, कि मेरे शरीर में बल नहीं है। अब मुझे जान पड़ा, कि मैं बीमार भी हूँ।

मन में सोचा, कि हाय! क्या मैं कभी स्वप्न में भी सोचता था कि मेरी यह दशा होगी? ज़रा सर में दर्द होने से, कितने डाक्टर मेरे आसपास आ बैठते थे वही मैं आज ख़ैराती अस्पताल में पड़ा हूँ। जिस के भ्रूक्षेप करने पर, सैकड़ों दास दासी और बन्धु बान्धव हाथ जोड़ कर सामने खड़े हो जाते थे, वही मैं आज पुलिस की हिरासत में हूँ। अपने किस कुकर्म का यह प्रायश्चित मैं भोग रहा हूँ? इस सम्बन्ध में तो मैं पूर्ण रूप से निर्दोष हूँ; किन्तु विश्वास कौन करेगा?

सभों ने देखा है, कि मेरे वस्त्र रुधिर से सराबोर हो रहे हैं। पुलिस को ख़बर अवश्य मिली होगी कि, खतरानी रमणी की हत्या हुई है। हो सकता है, कि अपने को निर्दोष ठहरानेके लिये, सुखदेव ने ही मेरे विरुद्ध प्रमाण संग्रह किये हों। इतना दोष तो मेरा अवश्य है, कि हत्यारे को पकड़ा नहीं, वरन् बिना किसी से कुछ कहे सुने, भाग कर, घर से निकल आया। देखता हूँ, कि सहज ही में सुखदेव इस बात को प्रमाणित कर दे सकेगा कि मैं ही हत्यारा हूँ। न जाने किस अशुभ मुहूर्त्त में, मैंने सुखदेव को देखा? किस अशुभ लग्नमें, उसने मेरा पीछा किया? मेरी आत्मा तो सदा कहती ही थी, कि मैं सुखदेव का संग न करूँ। बनारस में, भविष्य का दृश्य तो मुझे स्वप्नमें दिखा ही दिया गया था। किन्तु पछता कर अब क्या होगा? अब तो व्यर्थ ही मेरी जान गयी। देखता हूँ, कि मेरा इस विपत्ति से अब छुटकारा नहीं है। हाय! हाय! इस समय मेरी कौन सहायता करेगा?

सुनता हूँ, कि ऐसे अवसर पर, भगवान् लोगों की सहायता करते हैं; किन्तु भगवान् को तो कभी मैं ने जाना नहीं और जानने की इच्छा भी न की। यदि उन को जानता और उन को जानकर धर्म के मार्ग पर

चलता ; तो आज इतना दुःख क्यों भोगता ? सुनता हूँ, कि उन के भरोसे लोग दुःख को भी सुख ही मानते है। किन्तु उसका उपाय क्या है? हाय! मुझे उपाय कौन बतावे? इस कारागार में, इस रुग्नावस्था में, इस विपत्ति में, इस निःसहाय अवस्था में, मेरी सहायता कौन करे?

ऐसा सोचते सोचते, मेरा हृदय भर आया। मैं फूट फूट कर रोने लगा। जब मनुष्य को कोई उपाय नहीं सूझता, तब वह रोने लगता है। अश्रु बड़ी पवित्र वस्तु है। जो यथार्थ वेदना पाकर रोता है, उसके आँसूओं को नारायण अपने अञ्चल से पोंछते हैं। जो व्याकुल हो कर, आर्द्र नेत्रोंसे, परमात्मा की शरण में जाता है उसे वह शरण अवश्य देते हैं। जो आतुर हो कर, स्वच्छ अन्तःकरण से, उनसे सहाय का प्रार्थी होता है उसे वह अभय अवश्य करते है। विप्रों को तो कई बार ऐसा कहते सुना है।

मेरी आत्माने कहा,—"अभी समय है। मैं निराश क्यों होता हूँ? मैं भगवान्से प्रार्थना क्यों नहीं करता? वह हृदय के भाव को सहज में समझ जाते है। क्षमा माँगने से ही, वह क्षमा कर देते हैं। तब मैं क्षमा की भिक्षा क्यों नहीं माँगता? उन्हें तो लोग 'कारण रहित कृपालु', कहते हैं ; तब वह मुझ पर कृपा क्यों

न करेंगे? यदि वे कृपा न भी करें, तो हानि ही क्या है? मैं कृपा का प्रार्थी क्यों नहीं होता? क्योंकि अब तो कोई दूसरा उपाय शेष भी न रहा। जब सब द्वार बन्द ही हो गये; तब मैं इसी द्वार को क्यों नहीं खटखटाता। क्योंकि कहा है कि 'खटखटाओ और वह तुम्हारे लिये खोल दिया जायगा। माँगो और तुम्हें मिलेगा। खोजो और तुम पाओगे।' हाय' हाय! इतना जान कर भी, मैं क्यों नहीं भगवान् से प्रार्थना करता?"

मैं इसी सोच विचार में था, कि बाहर से कुछ आहट आने लगी। मैं सहम गया। प्रार्थना करते नहीं बनी। वह बात जहाँ की तहाँ रह गयी। मैं फिर व्याकुल हो गया। मुझे भय हुआ, कि कोई यहाँ आ रहा है। मैं नहीं चाहता था, कि कोई मुझे इस अवस्था में देखे। मनुष्य से मिलते मुझे सङ्कोच होता था; पर क्या करता, अपना वश ही क्या था?

देखते देखते, चारों ओर से, अस्पताल के द्वार खुल गये। ज्ञात हुआ कि भोर हो गया। लोग इधर उधर दौड़ धूप करने लगे। मैंने देखा कि मैं एक शय्या पर पड़ा हूँ। चारों ओर रोगी अपनी अपनी खाटों पर पड़े कराह रहे हैं।

फिर दवा दारू की व्यवस्था होने लगी। थोड़ी

देर में, बड़े साहब अस्पताल में पहुँच गये। उन के आते ही चारो ओर हलचल मच गयी। साहब पाँच सात मिनट में, इधर उधर सब देख सुन कर, चलने पर प्रस्तुत हुए। चलते समय मेरी खाट के पास आकर, उन्हों ने अपने नायब से कहा कि अब तो रोगी अच्छा जान पड़ता है। पुलिस को अब खबर दे दो। देखना इस पर पूरी निगरानी रहे। साहब की बात सुनकर, मैं मनही मन व्याकुल हो गया। किन्तु करता क्या ? फिर भगवान् का ध्यान आया, किन्तु प्रार्थना करते न बनी।

साहब के चले जाने के बाद, फिर चारों ओर शान्ति फैल गयी। कम्पाउन्डर औषधि की जगह जल का प्रयोग करने लगे। इतना खर्च होने पर भी, देखा कि रोगियो को कोई पानी तक देने वाला नहीं है। नौकर चाकर डाक्टर सब के सब अपने ही लाभ के सोचने में व्यस्त हैं। देखते देखते, खाने का समय आ गया। रोगियो को जो पथ्य दिया गया, उसका विवरण होना असम्भव है। लाख बार चेष्टा करने पर भी, मैं दो ग्रास खा न सका। सुना कि दूध घी का भी प्रबन्ध है; किन्तु सब को नहीं मिलता। जो खास तरह से डाक्टर तथा कर्मचारियों का कृपाभाजन बना रहता है, उसी को यह सुख प्राप्त होता है।

आज कई दिनों से, मैं यहाँ ठहराया गया था;

किन्तु चेतना नहीं रहने के कारण, मैं जान नहीं सका कि मेरी चारों ओर क्या हो रहा है। किन्तु आज एक ही दिन में, मुझे ज्ञात हो गया कि लोग अस्पताल के नाम से क्यों डरते हैं। लोगों की यह धारणा प्रायः ठीक है, कि मरना अच्छा; किन्तु अस्पतालमें रह कर दवा करनी कभी उचित नहीं।

इस समय मैं इतना कह रहा हूँ; किन्तु उस समय इन बातों की समालोचना करने का मुझे अवसर न था और न मुझ में इतनी सामर्थ्य ही थी। किसी प्रकार, अर्द्ध जागरित अवस्था में, एक दिन और बीत गया।

दूसरे दिन पुलिस और डिपटी के सामने मेरा इज़-हार हुआ। मैंने बहुत चेष्टा की, कि मैं निर्दोष समझा जाऊं; किन्तु मेरा सब परिश्रम विफल गया। सब को अटल विश्वास होगया, कि मैं ही खतरानीका घातक हूँ। अन्त में यही निश्चय हुआ, कि दूसरे दिन से मैं जेल (कारागार) में रक्खा जाऊँगा और यदि आवश्यकता समझी जायगी तो वहीं के अस्पताल में मेरी दवा होगी।

अब मैं भली भाँति से समझ गया, कि मेरा निस्तार नहीं है। अब मुझे ज्ञात हो गया, कि अपने कुकर्मों के लिये मुझे प्राण-दण्ड मिलेगा। मुझ पर विदित हो गया, कि रक्त द्वारा मुझे पाप-पङ्क-लिप्त कले-वर को मार्जित करना पड़ेगा।

आगे मुझ में सोचने की शक्ति न रही। हताश होकर, मैं बिछौने पर पड़ गया।

आठवां परिच्छेद।

आज कई दिनों से, कारागार की एक काली कोठरी में, मैं सड़ रहा हूं। हा! ऐसे रहने को सहनाही कहेंगे! कारागार का दण्ड भोगना उतना कठिन एवम् दुःखद नहीं है, जितना विचार के पहले और विचार के दिनों में "हाजत" में रहना। भगवान् न करें, किसी को इसका अनुभव हो? किन्तु जो लोग कुछ भी इस के विषय में जानते हैं, उनके रोंगटे 'हाजत' का नाम सुनते ही खड़े हो जाते हैं। जिन्हें कारागार में निवास करने का अभ्यास हो गया है उन को तो कोई बात ही नहीं है। किन्तु सहृदय पाठक सहज ही में समझ सकते हैं, कि उन दिनों मुझ पर कैसी बीतती होगी!

हाय! क्या था, क्या हो गया! यदि मनुष्य सदा दुःख ही भोगा करता, यदि उसे सुख का स्वाद नहीं

मिला रहता, यदि सब दिन बराबर ही बीतते ; तो मनुष्य को इतना कष्ट क्यों होता ? जो आज है, वह कल नहीं है ; इसी से तो हम लोगों को इतना सन्ताप होता है। जो चन्द्रदेव नीलोज्ज्वल आकाश में, तारिका-मण्डली में बैठ कर, सानन्द खिलखिला रहे थे और जिन्हें देख कर अनन्त सागर में अनन्त तरङ्गें उठ रही थीं, वे आज कहाँ गये ? आज आकाश मेघाच्छन्न हो गया। घोर नाद से हृदय को कम्पित करनेवाला सघन मेघ क्यों गरजने लगा ? चारों ओर निविड़ अन्धकार क्यों छा गया ? उतङ्ग ताल तरङ्गों से तरङ्गित होकर, सागर करारे से क्यों टकराने लगा ? अपने वक्षस्थल पर, उस ने असंख्य आवर्त्तों को क्यों धारण किया ? उस के भीम नाद को सुन कर, हृदय क्यों काँपने लगा ? लतावेष्टित, पत्र पुष्पों से सुशोभित, यह द्रुम आज शुष्क हो गया ! जिस की सुन्दर छाया में सहस्रों पशु पक्षी विश्राम पाते थे, आज, वह अकेला खड़ा है ! उस की ओर भूल कर भी कोई दृष्टिपात नहीं करता ! श्यामल शस्य से परिपूर्ण क्षेत्र, जो असंख्य प्राणियों को अन्नदान करता था, आज "कुरु खेत" हो गया है। पक्षी उड़ उड़ कर आते हैं किन्तु वहाँ एक दाना न पानेसे निराश हो कर चले जाते हैं। इसी से कहता हूँ, क्या था, क्या हो गया ?

हाय! मेरा वह दिन अब नहीं रहा! एक दिन था कि सहस्रों मनुष्य मेरा मुँह जोहा करते थे! एक दिन आज है, कि मेरी सुध लेने का किसी को अवकाश नहीं है। दुनिया में आज कौन जानता है, कि मुझ पर क्या बीत रही है? दूसरे की कौन कहे, राधाकान्त ने भी मुझे विस्मरण कर दिया!

राधाकान्त का ध्यान आते ही,मेरा शरीर पसीनों से सराबोर हो गया। पृथ्वी मेरी आँखों के सामने घूमने लगी। कलकत्ता याद आया, अपना पूर्व विभव याद आया। अपने प्रासाद, कोठी, बाग़, गृह-सुख, भेष-भूषा सबकी सुध,एक पर एक जल तरङ्गकी भाँति, आने लगी और मुझे निमग्न करने लगी। मैं व्याकुल हो गया। मन ही मन कहने लगा, कि मैं क्यों इस ओर आया। देश में लाखों मनुष्य वास करते हैं, कठिन परिश्रम से अपना जीवन निर्वाह करते हैं। वहीं रह कर, उन्हीं लोगोंके साथ काम काज कर, अपनी जीवन-यात्रा मैं ने भी निर्वाह क्यों न की? हा! लज्जा! हाय! जिस लज्जा के भय से भाग कर मैं इतनी दूर आया, वही लज्जा आज मुझे यहाँ सता रही है। उस दिन तो लज्जा से जान छुड़ाने के लिये मैं दूर भाग आया; किन्तु आज कैसी निर्लज्जता से उसी के सामने खड़ा हूँ। मैं क्या जानता था, कि एक विपत्ति से बचने को

चेष्टा में, मैं विपत्ति के सागर में प्रवेश कर रहा हूँ ? ठीक है, आज मुझे ज्ञात हुआ, कि कठिनता एवम् विपत्ति से भागने की चेष्टा करके कोई निश्चिन्त हो नहीं सकता। इन का सामना कर, इन्हें परास्त करने ही से मनुष्य सुखी हो सकता है। किन्तु आज भी तो मानसिक बल नहीं आता, आज भी तो इच्छा यही हो रही है कि किसी प्रकार यहाँ से भाग कर अपनी जान बचाऊँ।

आज मैं लोहे के बरतन में खा रहा हूँ। जिसके भोजन की गन्ध पा कर लोग अपने को धन्य मानते थे, वही मैं, आज, मोटे चाँवलों का भात खा कर अपना पेट भर रहा हूँ। कोमल गलीचे पर जो मुझे नींद नहीं आती थी, वही आज मैं पत्थर के फ़र्श पर कम्बल बिछा कर, अकेला, पड़ा रहता हूँ। किन्तु वास्तव में, कभी कभी, मुझे यहाँ नींद तो अच्छी आती है। हा! धिक्! किस पापका यह प्रायश्चित है ? किस अपराध का यह दण्ड है ? किस कुकर्म का फल है ? मैं ने किस का क्या बिगाड़ा, जो मुझे इतना दुःख हो रहा है ?

किन्तु देखता हूँ, कि दुःखकी इतिश्री भी अब शीघ्र ही होगी। बहुत दिनों तक मुझे इस संसार में अब बचना नहीं है। इसी कारागार में, इसी बन्दी भेष में, मुझे अपनी मानव-लीला समाप्त करनी पड़ेगी। किन्तु विचार ? विचारका दिन भी तो आवेगा। विचारा-

योगके सम्मुख, कठिन जाँचके लिये भी तो मुझे खड़ा होना पड़ेगा। किस प्रकार अपना कलङ्कित मुख मैं सर्व साधारण को दिखाऊँगा? स्त्री का हत्याकारी, रमणी का घातक, नारी-शोणितका प्यासा कहकर जब लोग मुझे धिक्कारने लगेंगे; तब मैं क्या उत्तर दूँगा? अपने माथेसे कलङ्क की छाप क्योंकर हटाऊँगा? लोगों पर अपनी निर्दोषता क्योंकर प्रकटित करूँगा? हाय! हाय! जीकर क्या होगा? ऐसे जीने से मरना निस्सन्देह अच्छा है। अतएव मुझे प्राणदण्ड मिले, तो मैं एक बार ही निश्चिन्त हो जाऊँ। किन्तु टिकटी पर लटकना! ओह! सोचने से प्राण व्याकुल हो जाते हैं! जिस समय फाँसी गलेमें पड़ेगी, उस समय क्या दशा होगी? जो हो, प्राण तो छुट जायगा। सुख दुःख अनुभव करने की शक्ति तो जाती रहेगी। और जो कहीं सपरिश्रम कारावास मिला तब तो और भी असह्य हो जायगा। क्या करूँ? नित्य प्रति तो देख रहा हूँ, यहाँ कैदियों को कितना कष्ट हो रहा है। पत्थर तोड़ना, कोल्हू चलाना, चक्की पीसना, तिस पर भी "वार्डरों" के लात, जूता और "हण्टर" खाना। खाने पीनेका ऐसा ही कष्ट। धर्म छुटा, जाति गयी, कलङ्क लगा, अब रहा क्या? क्यों प्राण शरीर-पिञ्जर से पयान नहीं कर जाते। हाय! हाय! भगवान् मेरी रक्षा

करें । अब क्या करूँ ? देखता हूँ, कि माथा ख़राब हुआ जा रहा है ।

ऐसा ही सोचते सोचते, मैं अधीर होकर अपने बिछौने पर पड़ गया । इसी समय मेरी कोठरी का किवाड़ खुला । एक पाचक मेरा भोजन लेकर आया । उसे देखकरमैंने कहा, "पाँडे ! आज मैं भोजन न करूँगा । तुम खाना यहाँ से ले जाओ ।" पाचक ने कहा, "तुम ऐसे अधीर क्यों होते हो ? खाना छोड़ने से क्या होगा ? जो होना है,होवेही गा । अभीसे जान क्यों दे रहे हो ? खाना छोड़ने से तुम कुछ मरोगे नहीं ।"

मैंने कहा—"क्या करूँ ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता । मैं सब कुछ समझता हूँ ; किन्तु मेरी बुद्धि ख़राब हो रही है । अब यह मेरी सहायता नहीं कर सकती ।"

पाचक—भगवान् में भरोसा करो । वह भय-भञ्जन हैं । दुःख-समूह को वह, सहज में, हटाने वाले हैं । बाबू ! विश्वास बड़ी चीज़ है । तुम विश्वास न छोड़ो । यदि तुम निर्दोष हो तो भगवान तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे । तुम भय न करो । तुमसे कहता हूँ, कि तुम भगवानसे सदा प्रार्थना करो । प्रार्थना द्वारा सब कुछ होता है । प्रार्थना बड़े काम की वस्तु है । मनुष्य के लिये इस बातका अन्दाज़ा पाना असम्भव है, कि

प्रार्थना करने से कितना लाभ पहुँचता और पहुँच सकता है। दीनों की पुकार को भगवान् सहस्र कर्णों से सुनते हैं। ईसाई, मुसल्मान, हिन्दू आदि सभी धर्मोंमें प्रार्थना की स्तुति है। अतएव मनुष्य को उचित है, कि अकपट एवम् असंकुचित भाव से भगवान् से प्रार्थना किया करे। क्योंकि सच्चे हृदय से प्रार्थना करने पर, परमात्मा उसे अवश्य सुनते हैं। दीन दुःखी उन्हें सदा प्रिय होते हैं। वह मन की पवित्रता देखते हैं और कुछ नहीं। पाप पुण्य उनके निकट कुछ नहीं है। अधम से अधम तकको वह अपनाते है। यहाँ रहते मुझे बहुत दिन बीत गये। कितनी ही विचित्र घटनाएँ मैं नित्य देखा करता हूँ। कितने ही अपराधियों को मैंने निस्तार पाते देखा, कितने ही कुकर्मियोंको सुमार्ग पर अग्रसर होते देखा। इच्छा होने हीसे, भगवान् सहायता करते हैं। संसार में कोई ऐसा कोई पाप नहीं है जिस का प्रायश्चित्त न हो। पश्चात्ताप सबसे बढ़ कर उत्तम औषधि पापोंसे छुटकारा पानेकी है। जब मनुष्य के हृदय में अनुताप का आवेग बढ़ता है तब वह कुकर्मों को परित्याग करने का यत्न करने लगता है। उसे इस उत्तम मार्ग पर चलते देख, भगवान उसकी सहयता करने लगते हैं। तुम भय न करो, भगवान् से प्रार्थना

करो। अहर्निशि, क्षण क्षण, पल पल, अनावर्त भगवान् से प्रार्थना करो। वह तुम्हारी रक्षा करेंगे। देखो, उस दिन भी मैं ने तुमसे यही बात कही थी; किन्तु तुमने मेरी बातों पर कान नहीं दिया। आज व्यर्थ व्याकुल हो रहे हो। मेरी बातें मान लो, भोजन परित्याग न करो।

मैं चुपचाप पाचक की बातें सुन रहा था। कुछ उत्तर दे न सका। मैं सोचता था, कि इतना साधारण मनुष्य होकर, धर्मके गूढ़ तत्त्वों को यह क्यों कर जानता है? जिन बातों को यह आज मुझे बता रहा है, मैंने तो कभी सुना नहीं। अन्तमें मैंने कहा, कि देखो पाँडे! तुम्हारे कहने से मैं कई दिनों से प्रार्थना कर रहा हूँ; किन्तु कोई लाभ होता दीख नहीं पड़ता।

पाचक ने मुस्करा कर कहा—"बाबू! ऐसा न कहो। इसमें तुम भूलते हो। तुम्हें देख कर मुझे ज्ञात होता है कि तुम पढ़े लिखे बड़े-घर के लड़के हो। कर्मके फेरसे आज तुम्हारी ऐसी दशा हो गयी है। इसी से तुम इतने व्याकुल हो रहे हो। अतएव तुमसे अधिक कहते भय होता है। किन्तु मैं ब्राह्मण हूँ, मेरा धर्म है कि जहाँ तक हो सके तुम्हें सुखी करने की चेष्टा करूँ। तुम निराश क्यों होते हो? तुम नहीं कह सकते, कि प्रार्थना करने से तुम्हें कुछ

लाभ नहीं हुआ और न होगा। प्रतिक्षण, भगवान् अपने जनोंकी सहायता कर रहे हैं। जो तुम अपने कुकर्मों पर पछता रहे हो, यह क्या उनकी कृपाका फल नहीं है? और कैदियों से तुम्हें अच्छा भोजन मिलता है, यह क्या भगवान् की कृपा नहीं है? भरोसा रखो। प्रतिक्षण, भगवान् को धन्यवाद दिया करो। धन्यवाद देनेसे कृपा बढ़ती है। अनन्त परमात्मा की अनन्त कृपाके लिये, हमलोगों को, अनन्त काल तक, अनन्त धन्यवाद प्रदान करने चाहिये। धन्यवाद देने से मनमें शान्ति आती है, ऐहसान का बोझ कम होता है, चरित्र उन्नत होता है और अधिक कृपा मिलने की आशा रहती है। तुम प्रार्थना करते जाओ, परमात्मा तुम पर अवश्य कृपा करेंगे। देखो, मैं कैदी हूँ तोभी परमेश्वर को नहीं भूला हूँ।"

मैंने कहा,—"यथासाध्य मैं तुम्हारे कहे अनुसार कार्य्य करूंगा। किन्तु आज भोजन करने की इच्छा नहीं है। आप क्षमा कीजिये। कुछ देर तक अकेले में, मैं विश्राम करना चाहता हूँ। किन्तु अकेले की बात तो बाहुल्य ही है, क्योंकि मैं तो यहाँ सदा अकेला ही रहा करता हूँ।"

पाचक ने कहा,—"अच्छा मैं जाता हूँ। मैं आशीर्वाद करता हूँ। भगवान् तुम पर दया करें!"

नवां परिच्छेद।

आज कई दिनोंसे, मैं कारागार में पड़ा हूँ। जो शोक सन्ताप तथा चिन्ता में झेल रहा हूँ उसका उल्लेख कठिन ही नहीं, वरन् एक प्रकार असम्भव ही है। हाय! मनुष्य क्या से क्या हो जाता है इसका कुछ ठिकाना नहीं। परिवर्त्तनशील प्रकृति का नियम विचित्र है। हमलोग जिस सृष्टि को देख कर, आँखें बन्द करते हैं उस पर फिर चक्षु उन्मीलन नहीं करते। पलक झिपते देर नहीं होती, कि सृष्टि की सृष्टि बदल जाती है। जहाँ हिम भूत गिरि-शिखर रहता है वहाँ सहस्र आवर्त्तधारी सागर सहस्र तरङ्गों से तरङ्गित होने लगता है। जहाँ असंख्य लताएँ सुन्दर पुष्पोंसे सुशोभित अरण्य वृक्षोंको वेष्टित किये प्रत्येक पवन-झकोरेसे आन्दोलित होती हैं, वहाँ वृहत् अट्टालिका निर्माण हो जाती हैं! जहाँ सहस्रांशु जगमगाया करते हैं वहाँ आकाश में घन घोर घटा छा जाती हैं, दामिनीकी दमक दीख पड़ती है। जहाँ असँख्य पत्र-भार से नम्र सुखद तरुवर अपनी विशाल छाया पृथ्वी पर डालता रहता है वहाँ पत्रहीन नग्न शाखाओंको विस्तार

कर भयानक वृक्ष खड़ा हो जाता है। जहाँ खिल-खिलाती हुई तरङ्गिणी मनको मोहती है वहाँ हरी हरी दूबसे पूर्ण खेत दिखाई देने लगते हैं। परिवर्त्तन संसार का नियम है; उलट फेर प्रकृतिका धर्म है; सृष्टिका स्वभाव है कि वह एक दशामें नहीं रहती। तो फिर मैं अपनी अवस्था को देख कर इतना व्याकुल क्यों हो रहा हूँ? यदि मैं इतने दिनों तक सुख भोग किये नहीं रहता; तो सम्भवतः मुझे इतना दुःख न होता। किन्तु उपाय! अब उपाय क्या है? उपाय तो अब केवल भगवान् के हाथ में है।

मैं तो इतने दिनो से भाक रहा हूँ। किन्तु कहाँ? कुछ तो लाभ नहीं हुआ। "दौरा" सिपुर्द हुआ। यहाँ भी कई दिनों से जाँच हो रही है। सुखदेव की सहायता से, पुलिस ने मेरे विरुद्ध यथेष्ट प्रमाण संग्रह कर लिये है। बचने का कोई उपाय नहीं दीख पड़ता। सरकार की ओर से पैरवी काफ़ी हो रही है। मेरे पास धन नहीं रहा कि किसी वकील वा बैरिष्टर की मदद लूँ। सफ़ाई के गवाह कहाँ मिलें? मेरे मुँह पर मुहर पड़ गई है। इजलास पर कुछ कहते नहीं बनता। यदि मैं कहूँ कि सुखदेव ने यह हत्या की, तो मेरा विश्वास कौन करेगा? मैं अपने कथन को-प्रमाणित क्योंकर करूँगा? हाय! देखता हूँ कि

प्राण व्यर्थ गये। क्या करूँ? कल फ़ैसले का दिन है। हाय! इस समय कोई ऐसा व्यक्ति भी पास नहीं है कि, जिसके द्वारा राधाकान्त को सम्वाद दूँ। मुझे दृढ़ आशा है; कि यदि उसे इस की ख़बर मिलती तो वह मेरी सहायता अवश्य करता। किन्तु सोच ही कर अब क्या होगा? जो होना होगा, कल हो हो जायगा। विचार का अन्तिम दिन तो कल ही है। देखें, क्या लेकर कल सूर्य्य उदय होते हैं।

अब मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे सदृश सैकड़ों निर्दोषी व्यर्थ दण्ड पाते हैं। इतना नियम क़ानून बनने पर भी, बलवान दुर्बल को पददलित करता है। कोई बात पूछनेवाला नहीं मिलता। सत्य तथा मिथ्या को बिलगानेवाला कोई नहीं दीख पड़ता। न्यायालय में भी अब यथार्थ विचार होना कठिन हो गया है। विचाराधीश की आँखों में भी लोग धूल झोंकते हैं। इधर मुक़द्दमेबाज़ी में रुपये इतने लगते है कि, ग़रीबों का ठिकाना ही नहीं लगता। क्या किया जाय? इतना किये जाने पर भी, इन नियमों का सुधार नहीं होता। जब तक दूसरे के सिर पर बीतता था, मुझे इतना ज्ञात नहीं होता था; किन्तु अब जब अपने सिर पर बीतने लगा, तब मुझे सूझता है कि फ़ौज-दारी में फँसना कैसा कठिन है। हा! यह सब मैं

क्या सोच रहा हूँ? क्या करूँ कैसे निस्तार पाऊँ?

इसी सोच विचार में दिन बीत गया। सन्ध्या भी चली गयी। कुछ रात बीते, मेरी कोठरी में एक क्षुद्र रोशनी की गयी। मेरी कोठरी के अन्धकार को दूर करने का इसमें यथेष्ट बल नहीं था। रोशनी से भी मेरी उदासी नहीं गयी।

इस समय मुझे पाचक की बात याद आयी। मैं ने दृढ़ संकल्प किया, कि अब सब आसरा छोड़कर, एक भगवान् का ही आसरा करूँगा। ऐसा विचार आते ही, मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे हृदय में एक नूतन बल का सञ्चार हुआ। हाथ जोड़ कर मैंने कहा, "हे भगवन्! तू मेरी रक्षा कर। मुझे अभी तक माया बेहद सता रही है। हाय! हाय! तुम्हारे सिवाय अब मेरा दूसरा सहारा नहीं है! सुना है कि तुम दीन दुःखिया की विनय सुनते हो। मुझसे बढ़ कर दूसरा कौन दीन होगा? जिस प्रकार हो मेरी रक्षा करो:—

भगवन्! मुझे शरण दो, चिन्ता सता रही है।
षड़यन्त्र से जगत के, अब जान जा रही है॥
सन्ताप के विपिन में, फिरता हूँ मैं भटकता।
क्षण क्षण दुःखद निराशा, मुझको दबा रही है॥

तुम सा सदय, दयामय, है दूसरा न कोई।
फिर क्यों मुझे बिसारा? माया रुला रही है॥
कारण बिना सदा तुम, रखते हो लाज सब की।
पर देख दुःख मेरा, करुणा लजा रही है॥
मुझ सा पतित जगत् में, तुमको कहाँ मिलेगा?
मेरे सहाय तुम हो, आशा बता रही है॥
भव-सिन्धु में अकेला, मैं आज बह रहा हूँ।
दुःख की तरङ्ग आकर, मुझ को डरा रही है॥
लेने दो अब सहारा, अपने चरण कमल का।
तेरी कृपा दयाकर, मुझको लुभा रही है।"

विनय करते करते मेरे मन में शान्ति का राज्य हो आया। ज्ञात हुआ, कि मुझे कोई दिलासा दे रहा है। मनमें आया, कि यदि मरना ही है तो मरूँगा, इसके लिये चिन्ता क्या है? जीवन की क्या अब आशा छोड़ दूँ? किन्तु विपन्न के लिये, आशा के अतिरिक्त औषधि ही क्या है? जीने की मैं आशा करता हूँ; किन्तु मरने पर भी मैं तय्यार हूँ। दुचित्त होना क्या ठीक है? उचित ज्ञात होता है, कि मरने ही के लिये मैं प्रस्तुत रहूँ। क्योंकि ऐसी अवस्थामें मरने अथवा जीने दोनों में सुख ही है। मरने में कष्ट नहीं होगा और जो कहीं जान बच गयी तो सुख की सीमा न रहेगी। मरने में क्या लगा है? मरने पर मेरा

जायगा ही क्या? जीवन के लिये तो मूर्ख ही मरते है। जीवन में दुःख को छोड़कर सुख तो नहीं है। श्वास के अतिरिक्त जीवन तो और कुछ है नहीं। प्रति क्षण, इस पर कुग्रहों का कुप्रभाव पड़ा करता है और इस सुन्दर शरीर को दुःख, रोग, शोक एवम् सन्ताप का आगार बनाये रहता है। मनुष्य मृत्यु से जितना दूर भागना चाहता है; उतना ही मृत्यु के निकट पहुँचता जाता है। इस क्षुद्र नीच जीवन के लिये, मनुष्य इतना व्याकुल क्यों रहता है? इसकी रक्षा के लिये मनुष्य को कितने निन्दनीय कार्य्य करने पड़ते हैं? किन्तु विचार कर देखो तो जीने का फल ही क्या है? वही दुःख।

मनुष्य-जीवन में सबसे अधिक शान्ति तो निद्रा की सेवा में मिलती है—इसी से नींद का हम लोग इतना आदर करते हैं और इतने चाव से उसे अपने निकट बुलाते हैं; किन्तु मृत्यु भी तो एक प्रकार की निद्रा ही है; तो फिर मृत्यु से मैं इस प्रकार भयभीत क्यों हो रहा हूँ? मनुष्य जो नहीं है वही होना चाहता है और जो है वह सहज ही में भूल जाता है; इसी से जीवन में इतना दुःख है। तब जीने की लालसा मैं क्यों करूँ? जब धन गया, परिवार गया, घर गया, संसार का सुख गया, सुख्याति गयी—तब इस

जीवन को धारण कर क्या होगा ? जब नाम गया, मर्य्यादा गयी, तब जी कर क्या होगा ? अच्छा मरना है, तो मरूँगा ।

मैं ने अनेक पाप किये । किन्तु भगवन् ! तुम इतना अवश्य ही देखते हो न, कि मैंने इस स्त्रीकी हत्या नहीं की । मनुष्य के निकट विचार हो अथवा नहीं ; किन्तु तुम्हारे दरबारमें तो विचार अवश्य होगा । मुझे फाँसी भी हो जाय, किन्तु मेरी आत्मा तो स्वच्छ है न । मेरा हृदय तो मुझे दोषी नहीं कहेगा । अच्छा ! जो हो, मैं यहीं, भगवान् के भरोसे पर, निश्चिन्त होकर सोता हूँ जो आगे आवेगा देखा जायगा ।

कम्बल पर पीठ देते ही, मेरी आँखें झिपने लगीं । मुझे जान पड़ा कि मेरे हृदय से एक बोझा हट गया । कुछ देरमें मुझे नींद आ गयी ।

निद्रितावस्था में, मैं ने देखा कि राधाकान्त एक तेजस्वी महात्मा के साथ मेरे सन्मुख खड़ा है । उसे देख कर, मैं विस्मय में आ गया । मुझे व्याकुल देख कर महात्मा ने कहा,—"देखना, धीरज न छोड़ना, अभी बहुत कुछ तुम्हें सहना है; किन्तु अन्त भले का सदा भला है । इसके पहले भी, एक बार तुम्हारा शरीर स्पर्श कर, तुम्हें मानसिक बल प्रदान किया था ।"

इतना सुन, मैंने लपक कर राधाकान्त को पकड़ना चाहा, किन्तु इसी बीच मेरी आँखें खुल गयीं।

कोठरी के किञ्चित् प्रकाश से जान पड़ा कि भोर हो गया है। साथ ही साथ ध्यानमें आया कि, मेरे विचार का आज ही फल प्रकाशित होगा।

दसवां परिच्छेद।

दिन के बारह बजे हैं। मैं दौरे के इजलास पर, कटघरे में, खड़ा हूँ। दोनों ओर बहुतेरी पुलिस खड़ी है। इजलास पर मनुष्यों की बड़ी भीड़ है। लोगोंका बदन से बदन छिल रहा है। मेरी जान जाने को है किन्तु दूसरे लोगोंको तमाशा है, यही संसार है। यहाँ दूसरे के दुःख से कोई दुःखी नहीं होता।

सामने, इजलास पर "सेशन" के हाकिम विराजमान हैं। बगल में एक ओर जूरी बैठे हैं। वकीलों की संख्या भी कम नहीं है। सबके सब इजलास की

ओर देख रहे हैं। सभी मेरा फैसला सुनने को उत्सुक हैं। चारों ओर घोर निस्तब्धता छा रही है।

सन्नाटे को भङ्ग कर, जजने जूरीसे पूछा—"आप लोगोंके विचार में आसामी अपराधी है वा नहीं?" जूरी में एक जाति का धनी बनिया था। उसने हाथ जोड़ कर कहा कि, हुजूर के सामने मेरी राय की क्या हकीकत? मेरी क्या मजाल कि हुजूर के सामने अपनी ज़बान खोलूँ? अगर जनाब इसे गुनहगार समझते हों, तो मेरी भी यही राय होगी कि इसे सज़ा दी जाय और अगर हुजूर की तजवीज में यह बेक़सूर हो तो मैं भी कहूँगा कि बेशक छोड़ दिया जाय। और ज़ियादा मैं क्या कहूँ? हाकिम ने कहा कि ऐसी बात नहीं है। आप लोगोंको ज़रूर कहना पड़ेगा कि आसामी क़ुसूरवार है या नहीं। जूरी ने सहम कर कहा, कि भला यह कब मुमकिन है कि आप के मुक़ाबले में, मैं कुछ बोलूँ? मैं नाचीज हूँ। मुझे आप मुआफ़ करें। अब हाकिम से न रहा गया। उन्होंने कड़क कर कहा, कि बकबक करनेसे काम नहीं चलेगा, तुम बोलो इस ने क़ुसूर किया या नहीं। विचारा जूरी बगल झाँकने लगा। दोनों हाथोंसे सर खुजला कर और मुँह बा कर हाकिम की ओर देखने लगा। उस विचित्र दृश्य को देखकर दर्शक-मण्डली अपने को रोक न

सको। सबके सब हँस पड़े। उनिया और विपत्ति में पड़ा। चारों ओर मुँह वा वा कर देखने लगा।

मैं अपनी वर्त्तमान अवस्था भूल गया। वहाँ का रङ्ग ढँग देख कर, मेरे मनमें आया कि मेरे देशकी क्या दशा हो रही है! कैसे निकम्मे लोगों से रहस्य-पूर्ण, भयानक मामिलों की जाँच में सहायता ली जाती है! भला जो स्वतन्त्र रूप से अपनी राय नहीं दे सकता, वह निष्पक्ष भाव से क्या विचार करेगा? मुझे जान पड़ा कि यह भी नाटक का अभिनय ही है। इससे कुछ होने जाने का नहीं है। मैं नहीं समझ सकता, कि ऐसे लोगो पर इस कामका भार क्यों सौंपा जाता है जो बुद्धि से कोसों दूर है।

मैं इसी विचार में था, कि जूरी लोगोंने मुझे अपराधी बताया। सुनते ही, मैं सन्न हो गया। कुछ सोचने की शक्ति मुझ में न रही। कठघरेका डण्डा धर कर, मैं झुक गया।

अन्तमें जजकी बारी आयी। मेरी ओर देखकर, गम्भीर भाव से, उन्होंने कहा कि बहुत दुःखके साथ मुझे कहना पड़ता है कि हरेन्द्र! तुम पर खतरानीकी हत्या का अपराध पूर्ण रूपसे साबित हो गया है। अतएव ताज़ीरात हिन्द की ३०२ धाराके अनुसार मैं तुम्हें प्राण-दण्ड देनेको बाध्य हूँ। अतएव you will be hanged

by neck till you are dead, किन्तु तुम इसकी अपील हाईकोर्ट में कर सकते हो और मेरी इच्छा तथा ईश्वरसे प्रार्थना है कि वहाँ से तुम रहाई पाओ।

यह सुनते ही पृथिवी मेरे सामने घूमने लगी। जान पड़ा कि मेरे पैरोंके नीचे ज़मीन धसी चली जा रही है। हिलने डोलने की शक्ति मुझ में शेष न रही। मेरी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। एक क्षण, मैं कटघरेके ऊपर माथा रखकर अचेत सा खड़ा रहा; किन्तु मुझे विश्राम नहीं मिलने पाया। पुलिस मुझे कटघरे से निकाल कर जेल में ले चली। मुझे निश्चय हो गया, कि इसी प्रकार अन्तमें जेल की टिकटी पर मेरी ज़ीवन-लीला समाप्त होगी।

अन्त में कोई सहायक और पास में पैसा न रहनेके कारण, जेलसे अपील कर, मैं जेल ही में दुःखके सहवासमें अपने जीवन के शेष दिनोंको बिताने लगा।

इस समय शोक, चिन्ता, निराशा और सन्ताप जो मुझे सता रहे थे उनका उल्लेख सर्वथा असम्भव है।

ग्यारहवां परिच्छेद।

आज कई दिन मुझे अपील किये बीत गये। अभी तक उसका कोई सम्वाद नहीं मिला। जेलर से कई बार पूछा; किन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि अभी हाईकोर्ट से कोई ख़बर नहीं आयी है।

मन तो बहुत व्याकुल था अवश्य, किन्तु परमात्मा की ओर जब तब ध्यान झुक जाता था। मैं, नियम पूर्वक, दिन रात में कई बार, प्रार्थना करता था और प्रार्थना करने पर, मेरी आत्मा को एक प्रकारका बल मिलता था। अब मेरा विश्वास दृढ़ हो चला था, कि भगवान् जो करेंगे मेरी भलाई का करेंगे। यहाँ मेरे साथ अन्याय हुआ तो हुआ; किन्तु वहाँ से मेरे साथ अन्याय कदापि नहीं होगा। अब मैं भली भाँति जान गया कि सब काम उन्हीं की प्रेरणा से होते हैं। मनुष्य व्यर्थका सोच करता है। कभी मुझे ऐसा भी ज्ञात होने लगा, कि मेरी प्रार्थना उनके कानों तक पहुँचती है। किन्तु यह बुद्धि सदा समभाव से नहीं रहती थी। कभी कभी, दिन रात में कई बार, मेरी व्याकुलता सीमा लाँघ जाती थी।

और मैं व्यग्र हो जाता था। मृत्यु, अहर्निश, कराल मूर्त्ति धारण किये मेरे सामने खड़ी रहती थी, यह मुझे दुःख तो बहुत देती थी, किन्तु इतना ज़रूर था कि भगवान् के समीपवर्त्ती यह मुझे कर रही थी। अब मुझे ज्ञान होने लगा कि ईश्वर की शरण में जाने में, उन के पादपद्म में अपने को समर्पण करने में, एक अलौकिक अनिर्वचनीय सुख है।

इन्हीं सब सोच विचारों में समय बिताने से मुझे प्रत्यक्ष विदित होने लगा कि, दुःख एवम् विपत्ति में जिस सुगमतासे हम लोगोंको भगवान् याद आते हैं वैसे सुख के समय कदापि नहीं आते। यदि सुख की घड़ियों में परमात्मा मुझे याद आते तो आज मुझे इतना दुःख झेलना क्यों पडता? श्रीगुरु नानक जी ने ठीक कहा है कि:—

"दुःख में सुमिरन सब करें,
सुख में करे न कोय।
नानक जो सुख में भजे,
तो दुःख काहे को होय।"

जब मन बहुत दुःखी हो गया, तब एक बार तीसरे पहर दिन में अपनी अँधेरी कोठरी में, मैं प्रार्थना करने लगा। विनय करते करते मुझे रोमाञ्च हो आया और गद्गद स्वर से मै आप ही आप गाने लगा:—

"विनय करते भी भगवन् हाय,
मुझ को लाज आती है।
कलेजा मुँह को आता है,
निराशा आ दबाती है।
समर्पित देह को अपनी,
तुम्हारे पग में करता हूँ।
दयासिन्धो! दया कीजे,
नहीं तो ख्याति जाती है॥
जो दोषों को विचारोगे,
न गुण का लेश पावोगे।
न देना ध्यान कर्मों पर,
धड़कती हाय छाती है॥
जगत् के नाथ तुम को वेद,
कहते हैं, पतित पावन!
तो क्या यह छार बाहर विश्व के,
प्यारे दिखाती है॥
तेरी शरणों में आकर भी,
वृथा क्यों ताप सहता हूँ?
नहीं निन्दा प्रभो, तेरे,
विरुद को मुझ को भाती है।
नहीं वह काल को डरता,
जिसे आशा तुम्हारी है।

तेरे प्रेमी को जीवन मुक्त,
श्रुतियाँ नाथ गाती हैं॥
करम-वश मैं जहाँ जाऊँ,
न छुटे ध्यान चरणों का।
यही बिनती करूँ निस दिन,
सुमति मुझ को बताती है॥

गीत समाप्त होते न होते, मेरी कोठरीका दरवाज़ा झनाक से खुल गया। मैं अपने कम्बल पर सम्हल बैठा और द्वार की ओर फिर कर देखा तो दो भले मानुस अँगरेज़ी पोशाक में सामने खड़े हैं। इन से मेरा कभी का परिचय नहीं था। इस प्रकार इन्हें अपने निकट आते देख कर मेरे हृदय में लज्जा, संकोच तथा घृणा का सञ्चार हुआ। मैं माथा झुका कर चुप बैठ रहा। किन्तु मेरे भाव की ओर कुछ भी ध्यान न देकर ये दोनों व्यक्ति मेरे समीप चले आये। इन के पीछे मेरा जेलर भी था।

मेरे निकट पहुँच जाने पर, उन लोगो ने जेलर से कहा कि यदि कुछ हानि नहीं हो तो आप हम लोगो को थोड़ी देर यहाँ अकेले रहने दीजिये। हम लोग आसामी से कुछ पूछना चाहते है। सम्भव है आप के सामने इन्हें कहने में कुछ संकोच हो। "कुछ हरज़ नहीं" कह कर जेलर वहाँ से चला गया।

अपने को अकेला पा, निस्तब्धता को भङ्ग कर आगन्तुकोंमें से एक ने कहा,—“मैं समझता हूँ कि आप का नाम हरेन्द्र है।”

मेरे “हाँ” कहने पर, उन्हों ने कहा कि मैं बैरिष्टर हूँ और आपको ओर से बहस करने के लिये मुझे ब्रीफ़ (Brief) मिला है। इसीलिये आप से कुछ इंस्ट्रक्शन (Instruction) लेने आया हूँ। आशा है कि, आप मेरी बातों का ठीक ठीक सङ्कोच छोड़ कर उत्तर दीजियेगा।

मैं—आप को मेरी ओर से काम करने के लिये किस ने नियुक्त किया? आप से मेरा कभी का परिचय तो नहीं है, कि आप स्वयम् इस कार्य्य का भार लेंगे।

बै०—हाँ! मुझे एक व्यक्ति ने नियुक्त किया है। किन्तु उस का नाम मैं आप को नहीं बताऊँगा। आप मुझे क्षमा करेंगे।

मैं—आप की जो इच्छा। किन्तु अपने उपकारी का नाम सुनना क्या मेरे लिये उचित नहीं है?

बै०—सफलता प्राप्त हो जाने पर, आप स्वयम् जान लीजियेगा। अभी उत्सुक होने की आवश्यकता नहीं है।

मैं—अच्छा, यही सही। किन्तु पता जानने से,

मैं उस को, अपने अन्तकाल में, इस उपकार के बदले अनन्त धन्यवाद देता ।

वै०—आप का अधीर होना व्यर्थ है। मुझे पूर्ण आशा है, कि यदि आप हम लोगों से कोई बात न छिपाइयेगा तो आप की रिहाई में सन्देह नहीं है।

मैं—यह मरीचिका मात्र है। भला, अब मेरे बचने की क्या आशा है ?

वै०—आप इस प्रकार निराश क्यों होते हैं ? यह कोई अनहोनी बात नहीं है। दौरे में आप की ओर से पैरवी नहीं हुई, इसी से आप को सज़ा मिली। यहाँ ऐसा होने नहीं पावेगा। आप भय न कीजिये। सङ्कोच छोड़ कर, सब बातें साफ़ साफ़ कह दीजिये। आप मुझ से कुछ न छिपाइये।

मैं—यह तो आपने ठीक कहा। किन्तु मेरी बातोंपर विश्वास कौन करेगा ?

दूसरे आगन्तुक ने गम्भीरभाव से मुस्करा कर कहा, "आप इस की चिन्ता न करें। कोई ऐसी अनहोनी बात नहीं है जिस का विश्वास न किया जाय। आप शंका न करें। यदि आप छल छोड़ कर सत्य कहियेगा; तो कम से कम मैं ज़रूर विश्वास करूँगा और चेष्टा करूँगा कि संसार उस पर विश्वास करे।

मैं ने कहा कि यह जाने बिना कि आप कौन हैं, मुझे क्योंकर आप की बातों पर विश्वास हो।

दूसरा आगन्तुक—क्या मुझे आप को परिचय देना होगा? बिना कहे काम नहीं चल सकता?

मैं—जब तक आप का परिचय नहीं जान लूँ, मैं क्योंकर अपना भेद आप से कहूँगा?

दू॰ आ॰—अच्छा, सुनिये! मैं कलकत्ते के जासूस-विभाग का एक जासूस हूँ। खतरानी की हत्या का पता लगाने को यहाँ कई दिनों से आया हुआ हूँ। कुछ रहस्यों का पता लगा है। आज मैं बनारस से यहाँ आ रहा हूँ। अब आप से कुछ बातों का पता पाना आवश्यक हुआ। इसी से आप के निकट आया हूँ। अब तो आप सहज में समझ सकते हैं कि, हम लोगों से आप अपना सब भेद कह सकते हैं।

मैं—देखता हूँ कि, दैव मुझ पर अब निश्चय सहाय है। किन्तु ऐसा कौन दयावान सुहृद है, ऐसा कौन हितचिन्तक परम मित्र है कि इस विपत्ति के समय इस प्रकार मेरी सहायता कर रहा है? राधाकान्त, तुम्हारे सिवाय तो इस संसार में कोई अपना नहीं है। किन्तु मेरी विपत्ति की खबर तुम्हें क्योंकर मिलेगी?

बैं॰—इन सब बातों को छोड़िये। शीघ्र अपना

भेद कहिये। क्योंकि बहुत देर तक हम लोग यहाँ ठहर नहीं सकते।

मैं०—यदि आप लोग इतना आग्रह करते हैं तो सुनिये। विश्वास करना अथवा न करना, यह आप लोगोंका काम है। भगवान् जानते हैं, मैं इस मामिले में निरपराध हूँ। मैं ने खतरानी की हत्या नहीं की। यदि आप लोग अनुसन्धान करेंगे तो ज्ञात होगा कि सुखदेव ने ही उस की जान ली। हाँ। इतना अवश्य है कि खतरानी कुलटा थी। एक दिन निशाकाल में सुखदेव ने खतरानी को मेरे कमरे में देखा। वह अपने क्रोध को सम्बरण नहीं कर सका और कटारी से उसे काट डाला। मेरे वस्त्रों में रुधिर लग गया था। मैं ज्ञानहत हो गया और भाग कर बाहर निकल आया। राह में पुलिस के लोगों ने मुझे पकड़ लिया। अपना भेद किस से कहूँ? मेरी बातों पर कौन विश्वास करता? इसी भय से, अपने मुँह पर मुहर देकर मैं चुप रह गया। आज पहले पहल मैं इस भेद को आप लोगों पर प्रकटित करता हूँ। इतना अवश्य है कि मेरे पास इस कथन को समर्थन करने का कुछ प्रमाण नहीं है।

जासूस—प्रमाण की चिन्ता आप न कीजिये। इस का भार मेरे उपर है।

जब मैं अपनी कथा कह रहा था, बेरिस्टर महाशय नोट ले रहे थे। मेरी कहानी पूरी होने पर उन्होंने जोश में आ कर कहा कि बेशक पुलिसवालों ने आप के साथ बड़ा जुल्म किया है। देखा जागया। इस बार मैं इन दुष्टों का भण्डा-फोड करूँगा। वाह! ऐसे न्याय की तेज रोशनी में भी ये फ़साद करने से बाज़ नहीं आते! एक निर्दोषी के विरुद्ध इन सभी ने इतने सबूत इकट्ठे कर दिये हैं।

जासूस—आप मेरे ही मुँह पर हमारी जातिवालों की इतनी निन्दा कर रहे है। क्या आप को ऐसा करना उचित है?

बे०—नहीं, पुलिस में और आप लोगों में बहुत अन्तर है। आप लोगोंमें अभी करपशन (Corruption) नहीं घुसा है। आप लोगों को अपनी ड्यूटी (Duty) का ख्याल है। आप लोग निरपराधियों को फँसाने की कभी भूल कर भी चेष्टा नहीं करते। जो हो, इस समय इन बातों पर तर्क वितर्क करने का अवसर नहीं है। फिर कभी देखा जायगा। आप को यदि कुछ हरेन्द्र बाबू से और पूछना हो तो पूछ लीजिये।

जासूस—भला, आप यह कह सकते है कि खुत-रानी आप के कमरे में निशाकाल में क्यों गयी थी?

मैं—मुझे कुछ छिपाना नहीं है। वह पाप-बुद्धि

से उत्तेजित हो कर मेरे निकट गयी थी। उसकी इच्छा थी कि मैं उसके साथ विलास करूँ। किन्तु मैंने ऐसा करने से इनकार किया।

जासूस—काशी से क्योंकर खतरानी यहाँ आयी?

मैं—सुखदेव उसे बहका कर लाया था।

जासूस—जब सुखदेव ने उसको हत्या की, तब आप के वस्त्रमें रक्त क्योंकर लगा?

मैं—खतरानी मेरे समीप खाट पर बैठी थी।

जासूस—वहाँ आस पास कोई जगा था?

मैं—यह तो नहीं कह सकता।

जासूस—आहट पाकर कोई वहाँ आया?

मैं—नहीं।

जासूस—हत्या करने पर सुखदेव ने क्या किया?

मैं—कटारी हाथ में लिये वह दूसरे कमरे में चला गया।

जासूस—आप ने उसे पकड़ा क्यों नहीं?

मैं—मुझे भय हुआ कि हम पर भी अस्त्रप्रहार न करे।

जासूस—दूसरे को पुकारा क्यों नहीं?

मैं—यह तो मुझ से भूल हुई। मैं बहुत घबरा गया था। मेरी बुद्धि स्थिर नहीं थी। मेरा चित्त चञ्चल हो गया। कर्त्तव्याकर्त्तव्य का मुझे ज्ञान नहीं रहा।

जासूस—पुलिस में जाकर आपने सम्वाद क्यों नहीं दिया ?

मैं—मैं तो कह ही चुका कि मेरी व्याकुलता ऐसी बढ़ गयी थी कि मुझ में सोचने की शक्ति न रही। बिना कुछ सोचे विचारे मैं मैदान की ओर निकल पड़ा।

जासूस—रास्ते में आपसे किसीको भेंट नहीं हुई ?

मैं—नहीं। रात अँधेरी थी। कोई उधर आता जाता नहीं था।

जासूस—आप कोई ऐसी बात बता सकते हैं जिस से सुखदेव पर लोगों का सन्देह हो ?

मैं—यह तो मैं नहीं कह सकता।

जासूस—अच्छा। जिस समय सुखदेव आप के कमरे में आया उस समय उस के बदन पर कौन से कपड़े थे ?

मैं—कुछ देर सोचकर बोला कि उसका सिर ख़ाली था। बदन पर चिकन का एक पञ्जाबी कुरता था। शान्तीपुरी धोती और पैर में एक पञ्जाबी जूता। हाथमें कटारी।

जासूस—कटारी किस प्रकार की थी ?

मैं—उस की मूँठ पर हाथी का दाँत था। कटारी नैपाली थी।

मेरे इज़हार को जासूस अपनी नोटबुक में लिखता जाता था। और बीच बीच में आँखें गड़ा गड़ा कर वह मेरी ओर देखता जाता था। उसकी आँखों से प्रतिभा की एक विचित्र ज्योति निकलती थी।

इस समय मुझे एक बात याद आयी। मैंने जासूस से कहा कि एक बात यह है कि जिस समय सुखदेव खतरानी को मार कर, कमरे के बाहर जाने लगा एक बार वह डगमगा गया और अपना रक्तसिक्त दाहिना हाथ दीवार पर देकर वह एक मुहूर्त्त वहीं दीवार के सहारे खड़ा हो गया। मुझे विश्वास होता है कि उसके हाथकी छाप दीवार पर पड़ गयी है।

यह सुनकर जासूस मारे आनन्द के उछल पड़ा। जोश में आकर उसने कहा कि असल अपराधी को उचित दण्ड दिलवाने में अब मुझे कठिनता कभी नहीं होगी। पुलिस को सुखदेव ने पूरा धोखा दिया है। किन्तु मेरी आँखों में वह धूल कदापि झोंक नहीं सकता। अब देखूँगा कि वह कैसे बच सकता है। यदि मनुष्य स्वभाव का मुझे कुछ भी परिचय है तो ज़ोर देकर मैं कह सकता हूँ कि हरगिज़ सुखदेव ने अभी तक उस निशान को नहीं मिटाया है। यह चिन्ह अभी तक, ठीक उसी हालत में, वहीं है। हाँ! हाँ! मैं यहींसे उसे देख रहा हूँ। अब सुखदेव मेरी मुट्ठी में

है। भागता कहाँ है? मुझ से उसने कहा कि अब घबराइये मत। अब आप पर कोई विपत्ति आ नहीं सकती। बहुत जल्द आप रिहाई पाइयेगा। मुझे इस बात का दुःख अवश्य है कि, अकारण आप को इतना कष्ट उठाना पड़ा। किन्तु क्या किया जाय? बुरे लोगोंके साथ रहने का यही फल है। कुसंस्कार का फल आपको भोगना पड़ा है। मैं आशा करता हूँ कि अब आप कभी ऐसे दुष्टों का साथ न करेंगे।

मैं—आपका कहना बहुत ठीक है। पर मैं क्या करता? भवितव्यता को कौन रोक सकता है? जो बीत गया उसके लिये मुझे चिन्ता नहीं है। बैरिष्टर ने जासूस से पूछा कि आप को कुछ और इनसे पूछना है?

जासूस के नहीं कहने पर, उन्हों ने मुझ से कहा कि मुझे पूर्ण आशा है कि दो चार दिनों में, मैं आप को यहाँ से निकाल सकूँगा। आप अधीर न हों। आप को जो हम लोगों ने कष्ट दिया, उस के लिये आप क्षमा करेंगे।

मैंने गद्गद स्वरसे कहा कि यह तो आपने अच्छी कही। आप की कृपा के लिये, एक मुख से, मैं क्योंकर धन्यवाद दे सकता हूँ। मेरा हृदय रोम रोमसे आप लोगो को धन्यवाद दे रहा है। भगवान् से मेरी यही

प्रार्थना है कि आप लोगों को इस कार्य्यमें सहायता हो और आप लोगों की सफलता से मेरे प्राण बचें। और अधिक मैं क्या कहूँ?

इसके बाद वे लोग उस स्थान से चले गये और मैं फिर अकेला वहाँ रह गया। बाहर से दरवाज़ा फिर बन्द कर दिया गया।

अपने को एक बार अकेला देख कर, मैं अपने कम्बल पर बैठ कर परमात्मा को धन्यवाद देने लगा। मैंने कहा कि हे सर्वशक्तिमान्! तुम जो चाहो सो कर सकते हो। तुम्हारे निकट अनहोनी कुछ नहीं है। ठीक है "अनहोनी प्रभु कर सकें, होनहार मिट जाय।" देखता हूँ कि तुम्हारी असीम कृपासे काल का भी भय आज मिट गया। अब आशा हो रही है कि मेरी रक्षा होगी। अहा! किस बड़भागी को दयाकर! तुम ने मेरी सहायता के लिये खड़ा किया! उस को मैं क्या कहूँ? जब मैं उसे जानता भी नहीं तो उसके मङ्गलार्थ मैं प्रार्थना ही क्या करूँ? इस उपकार के पलटे में, मैं उसका प्रत्युपकार क्या कर सकता हूँ। जो हो उसके लिये भी मैं तुम्हींको धन्यवाद देता हूँ। आज मुझे अक्षरशः सत्य ज्ञात हुआ कि जो तुम्हें ढूँढ़ता है उसको तुम सुध लेते हो। क्योंकि तुमने श्री मुखसे कहा है कि 'Seek ye after

me and every thing shall be unto you.' (अर्थात् मुझे पाने की चेष्टा करो, मुझे ढूँढ़ो, फिर संसार की सभी वस्तुएँ तुम्हें प्राप्त होंगी) मैं ने तुम्हें चाहा. तुमने मुझे रिहाई सौंपी दी, और आशा है कि तुम मेरी अब सदा रक्षा करोगी। अब मुझे पूर्ण रूपसे ज्ञात हो गया कि तुम्हें छोड़कर मनुष्य को किसी बात की इच्छा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि केवल तुम्हीं से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। अब मेरी यही प्रार्थना है कि इस पथ पर मैं दृढ़ रहूँ। हे शरणागत के भय को तोडनेवाले! रक्षा करो। मुझ दुष्ट अपराधी पर कृपा करो। मुझे अपनी भक्ति दो।

बारहवाँ परिच्छेद।

आज प्रायः एक सप्ताह बीत गया, किन्तु बेरिष्टर के यहाँ से मुझे कुछ सम्वाद नहीं मिला। रह रह कर मैं अधीर हो जाता हूँ। अन्त में आज सन्ध्या समय, मेरी कोठरी का द्वार खुला और जेलर हाथ में एक काग़ज़ लिये मेरे निकट पहुँचा। उस के मुख से आनन्द की छटा छिटक रही थी। उसे देख कर मेरे

हृदय में भी आनन्द का विकाश हुआ। मन ही मन मैंने सोचा कि अवश्य कोई आनन्दप्रद सम्बाद लेकर जेलर आया है; नहीं तो इसके मुखकी कान्ति ऐसी नहीं होती।

मेरे सामने आकर जेलर ने कहा कि मैं आप को बधाई देने आया हूँ कि आप को रिहाई हो गयी। मैं आपको धन्य मानता हूँ कि आपको यह शुभ सम्बाद देनेका मुझे अवसर मिला। आज तक मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, कि किसी खूनके आसामी को इस प्रकार मुक्त करूँ। कर्त्तव्य-पालन करने में यदि आप को मुझ से कुछ कष्ट प्राप्त हुआ हो तो आप क्षमा करेंगे।

मै बिना कुछ उत्तर दिये, कम्बल पर, भगवान् को धन्यवाद देनेके लिये बैठ गया। कृतज्ञता और आनन्द के अश्रु मेरे नेत्रों से उमड़ आये। रोकने से वह रुक न सके।

जेलर की आज्ञा से मेरा बन्धन खोल दिया गया। एक बार फिर मुझे स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। परमात्मा ने अनहोनी को होनी कर दिखाया। किन्तु किसके द्वारा यह कार्य्य सम्पन्न हुआ, यह जानने को मैं एकदम व्याकुल हो रहा था।

अपनी कोठरी से निकल कर बाहर चला। साथ ही साथ यह चिन्ता हुई कि यहांसे निकल कर मै जाऊँगा

कहाँ ? आज रातको कहाँ आश्रय लूँगा ? मेरे पास उस समय एक पैसा नहीं था। खानेको पासमें एक मुट्टी अन्न भी नहीं था। क्या जानता था कि जेलसे निकलने पर भी मैं चिन्ता और दुःख हीमें रहूँगा। कुछ देर तक मैं इसी सोच में आगे बढ़ रहा था, कि मेरे मनमें आया कि जिस भगवान् ने मुझे इस विपत्ति से बचाया, क्या आगे वह मेरी सुध नहीं लेंगे ? इस ध्यान के आते ही मेरे हृदय में आनन्द तथा बलका सञ्चार हुआ। ऐसा सोचते ही कि परमात्मा जहाँ ले जायँगे जाऊँगा, मैं जेलके फाटक पर पहुँच गया।

जेलर के रजिष्टर पर हस्ताक्षर कर, ज्योंही मैं उन के आफ़िस से निकला कि मेरी दृष्टि सुखदेव पर पड़ी। उसके हाथ हथकड़ी से जकड़े हुए थे, कमर रस्सी से बँधी हुई थी, ओहत चेहरे की कान्ति मलिन पड़ गयी थी। मुझे देखते ही उसने अपना मुँह फेर लिया। ज्ञात हुआ कि उसके हृदय में घृणा एवम् क्रोध का उदय हुआ। इच्छा होने पर भी, मेरे कण्ठ से एक शब्द न निकला। उस पर मुझे दया आयी। मन ही मन, मैं ने भगवान् से प्रार्थना की कि उस पर ईश्वर की कृपा हो और उसकी आत्मा सुख लाभ करे। क्योंकि अब कोई बात छिपी न रही। मुझे ज्ञात हो गया, कि जासूस ने सुखदेव के विरुद्ध प्रमाण संग्रह कर

उस को पकड़ा है और इसी से आज मेरी रिहाई हुई है। मुझे यह भी मालुम हो गया कि, किसी प्रकार, अब उसका छुटकारा नहीं है।

मैं वहाँ अनेक क्षण ठहर नहीं सका। जेल के बाहर के सुखद, स्वच्छ एवम् स्वतन्त्र समीर के लिये, मैं विकल हो रहा था। अतएव तुरत जेलके फाटक से निकाल कर, मैं सदर रास्ते पर आ गया।

वहाँ जिस पर मेरी दृष्टि पड़ी, उसे देख कर मेरे हृदय-सरोवर में आनन्द की लहरें उठने लगीं। मेरा सब भ्रम और सन्देह जाता रहा। मुझे स्मरण नहीं है कि, अपने जीवन में इससे अधिक सुखका भी अनुभव किया था वा नहीं। मुझे क्या ज्ञात था कि राधाकान्त मेरे उपकारका प्रतिफल इस प्रकार देगा? मुझे क्या मालूम था कि कालके गाल से मुझे निकाल कर, वह अपनी मैत्री का ज्वलन्त तथा प्रत्यक्ष प्रमाण देगा? मैं क्या जानता था कि ऐसे सङ्कट से बचा कर, ऐसी विपत्ति से मेरी रक्षा कर, असमय में मेरी सहायता कर, राधाकान्त आदर्श मित्र होगा? जिस समय मैं समझता था कि अब इस संसार में मेरा कोई अपना नहीं है, जिस समय मैं अनुमान कर रहा था कि मनुष्य-जाति से अब मेरा कुछ सम्बन्ध नहीं है, उस समय मैं क्या जानता था कि राधाकान्त मेरी मुक्ति के लिये व्याकुल हो रहा है?

मुझे सामने देखकर राधाकान्त दौड़ता हुआ आकर मुझ से लिपट गया और मेरी छाती में मुँह लुका कर फूट फूट कर रोने लगा। उसकी यह दशा देख, मैं अपने को रोक न सका और उसके साथ रोने लगा। अपने को रोकने की मेरी इच्छा न हुई और यदि इच्छा भी होती तो अपने को सम्बरण करने की मैं चेष्टा भी नहीं करता; क्योंकि राधाकान्त के साथ रोने में मुझे आनन्द मिलता था।

जब हम लोग कुछ शान्त हुए, मेरी दृष्टि एक महात्मा पर पड़ी, जो सहर्षमुख हम लोगों की ओर देख रहे थे। उन्हें देखते ही, मैं ने पहचान लिया कि यह वही महात्मा है जिन्हें मैंने राधाकान्त के साथ एक दिन स्वप्न में देखा था। दौड़ कर, मैं उन के पैरों पर गिर गया। मुझे उठा कर उन्हों ने सादर अपने हृदय से लगा कर मेरे माथे पर हाथ फेरा। उन के स्पर्श से मेरे मन में शान्ति का राज्य हो गया। ज्ञात हुआ कि, मेरे हृदय से शोक, चिन्ता और सन्ताप हट गये।

मैं ने गद्गद स्वर से कहा, "सरकार! इसके पहले भी इस दीन को आप के दर्शन का सुख प्राप्त हुआ है; किन्तु वह सपने की बात थी। आश्चर्य है कि जो कुछ मैंने स्वप्न में देखा था, उसे जागरित अवस्था में देख रहा

हूँ। मेरा अपराध क्षमा हो, मैं सरकार का परिचय पाने के लिये उत्सुक हूँ।

महात्मा—आप मेरा परिचय जान कर क्या कीजियेगा ? किन्तु जब आप इतना आग्रह करते हैं तो सुनिये, मैं एक परिव्राजक हूँ। मेरा नाम ज्ञानानन्द है। तुम्हारे मित्र के अनुरोध से उस दिन भी मैं तुम्हारे निकट आया था और आज भी आया हूँ। तुम लोगों के इस सुखद मिलन को देख कर, मैं बहुत सन्तुष्ट हुआ। भगवान् अब तुम लोगों को चिर सुखी करें और तुम लोगों में कभी वियोग न होने दें। देखो, धर्म-पथ से विचलित न होना। कारागार में जो सदुपदेश तुम्हें मिला है उसे कभी न भूलना और उसे काम में लाने का सदा यत्न करना। भगवान् को न भूलना। जो उन में विश्वास करता है, उन का भरोसा करता है, उन पर श्रद्धा रखता है, वह सदा सुखी रहता है। किसी अवस्था में, कोई दुःख उसे सन्तप्त नहीं करता। इस समय मैं तुम लोगों के समय को अधिक नष्ट करना नहीं चाहता। आज अनेक दिनों पर तुम लोगों में साक्षात्कार हुआ है। कहने सुनने को अनेक बातें होंगी। बस तुम लोग निश्चिन्त हो कर वार्त्तालाप करो। समय आने पर फिर मिलूँगा। इस समय इतना ही बहुत है। राधाकान्त ! इच्छा होने पर मेरे पास आना। हो

सके तो अपने मित्र को भी लिये आना। भगवान् की कृपा तुम लोगों पर बनी रहे और भक्ति अचलरूप से तुम लोगों के हृदय में राज्य करे।

इतना कह, महात्मा चलने लगे। मैंने और राधाकान्त ने उनकी चरण-रज अपने सीस पर धारण की। हम लोगों को आशीर्वाद दे, वह प्रस्थान कर गये।

इस बीच, हम लोगों के हृदय का वेग जाता रहा। आदर के साथ राधाकान्त का हाथ अपने हाथ में ले कर, मैं ने कहा कि और सब बातें पीछे होंगी, पहले तुम यह तो कहो कि मेरी ख़बर तुम्हें क्योंकर मिली?

राधाकान्त—एक दिन प्रयाग के एक समाचारपत्र में, मै ने पढ़ा कि "हरेन्द्र नाम के एक बङ्गाली को एक खतरानी की हत्या के अपराध में प्राणदण्ड हुआ है।" पढ़ कर मुझे तुम पर तो सन्देह नहीं हुआ, किन्तु नाम देख कर मै ग़म में पडा। अपने सन्देह को मिटाने के लिये, मै ने यहाँ एक वकील के नाम पत्र भेजा। उन का उत्तर पढ़ कर, मेरी जो दशा हुई उस का वर्णन करना कठिन है। खाना पीना भूल गया। आँखों से नींद जाती रही। कलकत्ते के डिटेक्टिव स्टाफ (Detective Staff) में जा कर, एक जासूस को मैं ने साथ लिया। मुझे पूर्ण विश्वास था कि तुम से ऐसा काम कभी हो नहीं सकता। वहीं से बैरिस्टर

को भी मैं साथ लिये आया। यहाँ आकर हम लोग कठिन परिश्रम से अनुसन्धान करने लगे। थोड़े दिनों में जासूस ने मामिले का पता लगाया। अन्त में, सुखदेव के विरुद्ध यथेष्ट प्रमाण का संग्रह हुआ। अब वह जेल में है। आशा है कि वह किये का फल पा जायगा। हाय! तुम्हें कितना कष्ट और दुःख हुआ! मैं कैसा अभागा हूँ! तुम इतना दुःख झेलो और मैं आनन्द से चैन उड़ाऊँ! तुम्हारी सम्पत्ति से राधाकान्त मज़ा उड़ावे और तुम दर दर मारे मारे फिरो। सोच कर हृदय विदीर्ण होता है। कलेजा मुँह को आता है।

मैं—राधाकान्त! तुम मुझे लज्जित न करो। मैं नहीं जानता था कि तुम ऐसे उदार और उच्च कक्षा के मनुष्य हो। शुभ मुहूर्त्त में, मैंने तुम्हारा साथ किया। मैत्री को तुम ने खूब निबाहा। मित्रता के ऋण से आज तुम उऋण हुए। तुम्हें मैं धन्यवाद क्या दूँ और क्योंकर दूँ?

राधा०—राम राम! धन्यवाद की तुम ने क्या कही! अकृतज्ञता के अपराध से बचने के लिये मैं ने इतना किया। किन्तु हाय! किया क्या? मेरे रहते तुम्हें इतना कष्ट हुआ। देखो, मेरा जीवन व्यर्थ है। एक दिन के उपकार के लिये भी अपनी जान हथेली पर लिये फिरना उचित है और यहाँ तो तुम

ने मेरे लिये अपना सर्वस्व गँवा दिया। क्या मैं इसे कभी भूल सकता हूँ कि मेरे ही कारण तुम्हें द्वार द्वार फिरना पड़ा, तुम्हें घर द्वार छोड़ना पड़ा, मिथ्या बोलना पड़ा, जूआचोरी करनी पड़ी और अन्त में जेल झेलना पड़ा। किन्तु इन बातों से अब क्या लाभ है? कहो, जब से हम लोगों का साथ छूटा तुमने क्या क्या किया? सुखदेव से तुम्हारी कहाँ भेंट हुई? उसके घर तुम क्यों गये?

मैं—पूरा वृत्तान्त पीछे कहा जायगा। किन्तु दैवात् काशी में सुखदेव से मेरी भेंट हुई। वहाँ से तो किसी प्रकार उस से पिण्ड छुड़ाकर मैं भाग आया, किन्तु फिर श्रीमथुराजी में उस ने मुझे देख लिया। फिर किसी प्रकार उस ने मुझे नहीं छोड़ा। उस का अभिप्राय क्या था, सो तो मैं कह नहीं सकता। यदि मैं यह सब जानता तो वहाँ क्यों जाता। किन्तु यह भी तो कहना व्यर्थ ही है, क्योंकि मेरे किये क्या हो सकता था। इच्छा न करने पर भी, तो मुझे सुखदेव के निकट रहना ही पड़ा।

राधा०—अब इस का दुःख न करो। तुम्हारे किसी पूर्व पाप का प्रायश्चित्त था। अन्त में कट ही तो गया।

मैं—दुःख की अब मुझे उतनी चिन्ता नहीं है। कारागार में जो जो अनुभव मुझे हुए हैं, उन के लिये

मैं भगवान् को असंख्य धन्यवाद देता हूँ। प्रभु ने अपनी कृपा का मुझे बहुत कुछ अनुभव कराया। पहले से मेरे विचार बहुत कुछ बदल गये हैं। अब मुझे ज्ञात हो गया कि परमात्मा कोई कार्य्य हम लोगों के अहित का नहीं करते। सब हम लोगों के भले ही का करते हैं।

राधा०—अच्छा, सुस्थिर हो कर ये सब बातें होंगी। इस समय तुम मेरे साथ विश्राम करने चलो।

मैं—कहाँ चलूँ ?

राधा०—यहाँ मैंने एक डेरा ठीक कर रखा है। कुछ दिन वहीं ठहर कर, फिर हम लोग देश पर चलेंगे।

मैं—सो क्यों ?

राधा०—क्यों क्या ?

मैं—मैं देश पर क्यों जाऊँगा ?

राधा०—बाहर फिरते तो कितने दिन बीत गये। अब कितने दिनों तक विदेश में रहोगे ?

मैं—देश भी तो अब मेरे लिये विदेश ही है। जैसे यहाँ ठहरने को जगह नहीं है वैसे ही वहाँ भी जगह नहीं है।

राधा०—तुम भूलते हो। वहाँ महाजनों का ऋण चुका कर, मैं नें तुम्हारी सम्पत्ति की रक्षा की है। वहाँ सब तुम्हारा ज्यों का त्यों है। तुम्हारे चले जाने पर,

तुम्हारे दिये हुए धन को मैं ने महाजन को दे दिया और उसकी कोठी में हिस्सेदार रह कर बहुत कुछ सम्पत्ति पैदा की। अब कुछ चिन्ता नहीं है।

मैं—धन लेकर अब मैं क्या करूँगा? संसार का सुख भोगना अब मैं नहीं चाहता। जिस भगवान् ने इस सङ्कट से मुझे बचाया, उसी की सेवा और उसका भजन करना चाहता हूँ।

राधा०—घर में रह कर भी तुम यह काम कर सकते हो। अपने धन को पुण्य-कर्म में, देश की भलाई में, दरिद्रों को विद्या तथा अन्न दान करने में लगाना। घर में रह कर जितना उत्तम काम कर सकते हो, बाहर रह कर पथ पथ मारे मारे फिरने पर क्या तुम कर सकते हो? महात्मा ज्ञानानन्द ने मुझे भली भाँति बताया है कि जो काम घर में रह कर हो सकता है, घर छोड़ने पर कदापि नहीं हो सकता। मेरे इस अनुरोध को तुम मान लो। तुम्हारा वहाँ मन न लगे तो पीछे जैसा विचार हो करना।

मैं—इस समय मैं तर्क वितर्क करने में असमर्थ हूँ। किन्तु मैं समझता हूँ कि घर में रहना अब मुझे उचित नहीं है। अभी तुम से अनेक बातें कहनी है। जब तक अपने मन की बातें तुम से न कह लूँ; तब तक इस की मीमाँसा नहीं हो सकती।

था। प्रथम दिन हम दोनों इसी प्रकार एक ही कमरे में सोये हुए थे। किन्तु उस दिन राधाकान्त मेरे यहाँ सोया था और आज मैं राधाकान्त के यहाँ सोया हूँ।

राधाकान्त सा सच्चा मित्र. इस संसार में, मिलना कठिन है। सच्चा मित्र वही है, जो स्वार्थ से काम नहीं करता है, जो उपकार उपकार के लिये करता है, जो प्रेम कर्त्तव्य समझ कर करता है, जो अपने मित्र को दुःख से बचाने के लिये अपने सुखका विसर्जन करता है। आज मैं ठीक जान गया, कि राधाकान्त "आदर्श मित्र" है। मैं अभी तक स्वप्न में भी नहीं जानता था, कि राधाकान्त ऐसी उच्च कोटि का मनुष्य है। मैं ने जगदाधार को हार्दिक धन्यवाद दिया कि, उन्हों ने कृपा कर ऐसे व्यक्ति को मेरा मित्र बनाया।

बड़ी देर तक अनेक बातों को सोचते सोचते, मेरा माथा गरम हो गया और मेरी नींद जाती रही। उठ कर मैंने राधाकान्त के बिछौने की ओर देखा। उसके चेहरे पर मेरी दृष्टि पड़ी। वातायन से आता हुआ चन्द्रालोक उस के शान्त मुख पर क्रीड़ा कर रहा था। देखा कि उसके मुख-मण्डल पर कुसंस्कार शोक अथवा चिन्ता के चिन्ह अब नहीं हैं। शान्ति, आनन्द, निश्चिन्तता, पवित्रता एवम् प्रेम अचल राज्य कर रहे हैं।

मन ही मन मैंने भगवान् को धन्यवाद दिया। मुझे ज्ञात हो गया कि अवश्य राधाकान्त का आचरण अब शुद्ध एवम् पवित्र हो गया है। मैं ने समझ लिया कि महात्मा की कृपा का फल है।

मैं यही सोच रहा था कि निकटस्थ आम्रके वृक्ष से कोयल का आलाप मेरे कानों में पड़ा। चिहुँक कर झरोखे की राह मैं ने उद्यान की ओर देखा। सामने चैतकी स्वच्छ चाँदनी छिटक रही थी। उद्यान की शोभा अनिर्वचनीय थी। ज्ञात होता था कि, मानों सारी सृष्टि चाँदी के वर्कमें मढ़ी हो। पवन, सुगन्ध के बोझसे, मन्द मन्द चल रही थी। उसकी शीतलतासे मेरा चित्त विकसित हो गया। मनमें शान्ति का प्रवेश हुआ। मेरी आँखें झिपने लगीं।

बिछौने पर पीठ देते ही, मुझे निद्रा आ गयी। और हम दोनों मित्र घोर निद्रा में बेसुध पड़ गये। दीन दुनिया की चिन्ता जाती रही।

परिशिष्ट।

ग्रन्थकार की दो दो बातें।

अपने पात्रों के विषय में, अब मुझे कुछ विशेष कहना नहीं हैं। सुखदेव को खतरानी की हत्या के अपराध में प्राण-दण्ड मिला। राधाकान्त और हरेन्द्र सुखसे अपनी जीवन-यात्रा निर्वाह करने लगे। राधाकान्त धर्माचरण पर आरूढ़ रह कर, गृहस्थी का भार वहन करने लगा। हरेन्द्र अपने तन मन धन को परोपकार में लगाने लगा। जेल के तापसे हरेन्द्र की कुवासनाएं जल गयीं। स्वार्थ को परित्याग कर, एकान्त में रहकर, भगवद्भक्ति में, उसने अपना मन लगाया। अपनी सम्पत्ति को वह देवार्पित धन मान कर, देवता होके काममें लगाने लगा। वह कभी अब बेकाम नहीं रहता था। उसे धारणा हो गयी थी कि, बिना काम के रहने से मनुष्य सुखी कभी नहीं हो सकता। काम करने ही के लिये मनुष्य को संसार में सृष्टि हुई है; विलास के लिये नहीं। सृष्टि का अपने

को एक अङ्ग मानकर, जगत्के हितसाधन में हरेन्द्र दत्त-चित्त हुआ। जिस प्रकार संसार के निद्रित हो जाने पर, चन्द्रदेव पृथिवी पर पीयूष वर्षण करते हैं, पृथिवी के एक कोने में विकसित होकर सुमन गन्ध प्रदान करता है और ये अपने उपकारों का प्रत्युत्तर नहीं चाहते और अपना कर्त्तव्य समझ कर संसार का हित करते हैं; उसी प्रकार निष्काम होकर हरेन्द्र परहित साधन में रत हुआ। हरेन्द्र ने विलासिता को एकदम परित्याग कर दिया। अपने लिये आवश्यकता से अधिक धन वह व्यय कभी नहीं करता था। दोनों मित्रों का आच-रण आदर्श हो गया। कभी कभी हरेन्द्र राधाकान्त के देश पर जाता था और उसीके परिवार को अपने परिवार के सदृश मानता था। बीच बीच में ज्ञानानन्द आकर इन्हें सदुपदेश दे जाते थे। वे सदा इन्हें परोपकार, पुनीत प्रेम तथा परमार्थ का उपदेश देते थे। उन से इन लोगोंको धर्म में यथेष्ट सहायता मि-लती थी।
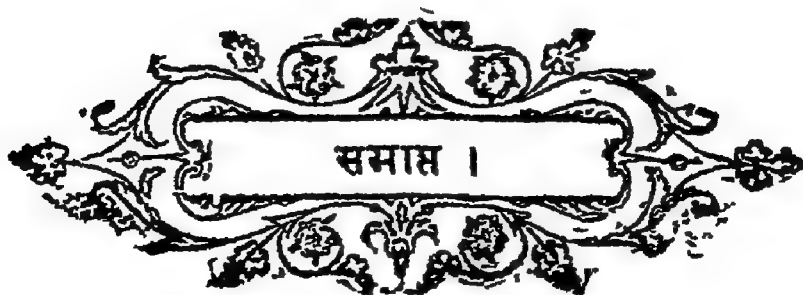
विज्ञापन

स्वास्थ्यरक्षा।

(द्वितीय आवृत्ति)

यह वही पुस्तक है जिस की तारीफ़ समस्त हिन्दी समाचार पत्रोंने दिल खोल कर की है। इस की उत्त-मता के लिये यही प्रमाण काफ़ी है कि इसका दूसरा संस्करण छप गया और बिक भी गया। अब तीसरेकी तय्यारियाँ होरही हैं। जो कोक शास्त्र की ज़रूरी बातों को जानना चाहते है, जो संसार का सच्चा सुख भोगना चाहते हैं, जो बहुत दिनोंतक जीना चाहते हैं, जो अपने घरका इलाज आप ही करना चाहते है, उन्हें यह पुस्तक अवश्य ही दिल लगाकर पढ़नी चाहिये। इसमें जो विषय लिखे गये हैं वह सभी आजमूदा हैं। मनुष्य को अपने सुख के लिये जो कुछ जानने की ज़रूरत है वह सभी इस में लिखा गया है। जो संसारमें सुखसे जीवन का बेड़ा पार करना चाहते हैं, उन्हें यह अनमोल पुस्तक लोभ त्यागकर अवश्य ख़रीदनी चाहिये। छपाई सफ़ाई इतनी सुन्दर है कि पुस्तक को छाती से लगाये बिना जी नहीं मानता।

दाम १॥) डाकखर्च ।) सुन्दर फैशनेबिल जिल्दवाली का दाम २) और डाकखर्च ।/)

अँगरेजी शिक्षा

प्रथम भाग ।

(चतुर्थ आवृत्ति)

आजतक ऐसी किताब नहीं छपी। इस किताबके पढ़ने से थोड़ी सी देवनागरी जाननेवाला भी बिना गुरु के अँगरेज़ी अच्छी तरह सीख सकता है। इसके पढ़ने से २।३ महीने में ही साधारण अंगरेज़ी बोलना, तार लिखना, चिट्ठी पर नाम करना, रसीद और हुण्डी वगैर: लिखना बखूबी आसक्ता है। किताब की छपाई सफ़ाई मनोमोहिनी है। हर एक अँगरेज़ी शब्द का उच्चारण दिया गया है। इसमें कूड़ा करकट नहीं भरा गया है। इस पुस्तक में वही बातें लिखी गई हैं जो व्योपारियों, रेलमें काम करनेवालों, डाकखाने में काम करनेवालों तथा तार घर आदि में काम करनेवालों के काममें आती हैं। दाम १५० सफों की पोथी का ॥) डाक खर्च /)

अंगरेजी शिक्षा

दूसरा भाग ।

जिन्होंने हमारा पहिला भाग पढ़ लिया है या जिन्होंने कोई दूसरी पुस्तक थोड़ी बहुत पढ़ली है उनके लिये हमारी "अँगरेज़ी शिक्षा" का दूसरा भाग निहायत उपयोगी है। इसमें अँगरेजी व्याकरण (English Grammar) बड़ी उत्तमतासे समझाया गया है। आजतक कोई पुस्तक हमारी नज़र नहीं आई, जिसमें इससे उत्तम काम किया गया हो।

व्याकरण वह विद्या है जिसके सीखे बिना किसी भी भाषाका आना महा कठिन है। कितनी ही किताबें क्यों न पढ़लो; जबतक व्याकरण का ज्ञान न होगा तबतक पढनेवाले का हृदय सूना ही रहेगा; लेकिन व्याकरण है बड़ा कठिन विषय।

इस कठिन विषय को ग्रन्थकर्त्ताने अत्यन्त सरल कर दिया है। हिन्दी जाननेवाला, अगर शान्त स्थान में, एकाग्र-चित्तसे, इसका अभ्यास करे तो बहुत जल्दी होशियार हो सकता है। इसके सीख जाने पर उसे चिट्ठियाँ लिखना, बाँचना, अँगरेज़ी समाचारपत्र पढ़ना बिल्कुल आसान हो जायगा। इस दावेके साथ

कहते हैं कि हमारी अँगरेज़ी शिक्षाके चारों भाग पढ़ लेने पर जिसे अँगरेज़ी में अखबार पढ़ना, चिट्ठियाँ वगैरः धड़ाके से लिखना न आजायगा तो हम दुगुनी क़ीमत वापिस देंगे। मगर किताब मँगा लेने से ही कोई पण्डित नहीं हो सकता, उसका याद करना भी ज़रूरी है। दाम केवल १) रुपया और डाक महसूल ≋) है।

अँगरेज़ी शिक्षा

तीसरा भाग।

इस भाग में विशेषण और सर्वनाम (Adjective और Pronoun) दिये गये हैं और उनको इतने विस्तारसे समझाया है कि मूर्ख से मूर्ख भी आसानी से समझ सकेगा। इसके बाद सब प्राणियों की बोलियाँ तथा संज्ञा और विशेषणों के चुने हुए जोड़े दिये हैं जिनके याद करनेसे अख़बार नॉविल आदि पढ़नेमें सुभीता होगा। इनके पीछे उपयोगी चिट्ठियाँ और उनका अनुवाद दिया गया है। शेषमें, शब्दोंके संक्षिप्त रूप (Abbreviations) बहुतायतसे दिये हैं। यह भाग दूसरे भाग से भी उत्तम और थोड़ा है।

दूसरे भागके आगेका सिलसिला इसी भागमें चलाया गया है। दाम १) डाक खर्च ≤)

अँगरेजी शिक्षा।

चौथा भाग।

हमारी लिखी हुई अँगरेजी शिक्षाके तीनों भागोंको पबलिक ने दिलसे पसन्द किया है। अतः हमें अब प्रशंसा करनेकी आवश्यकता नहीं है। इतना ही कहना है कि अँगरेज़ी व्याकरण जितना बाकी रह गया था वह सभी इस भागमें खतम कर दिया गया है; साथ ही और भी अनेक उपयोगी विषय दे दिये गये हैं। दाम १) डाकखर्च ≤)

हिन्दी बंगला शिक्षा

बङ्गला साहित्य आजकल भारत की सब भाषाओंसे ऊँचे दर्जे पर चढ़ा हुआ है। उसमें अनेक प्रकार के रत्नोंका भण्डार है। अतः हर शख्स की इच्छा होती

है कि हम उन ग्रन्थोंको देखें और आनन्द लाभ करें। किन्तु बँगला सीखनेका उपाय न होनेसे लोगोंके दिलकी मुराद दिलमें ही रह जाती है। हमारे पास ऐसी पुस्तक की, जिसके सहारे से हिन्दी जाननेवाला बँगला बोलना, लिखना और पढ़ना जान जावे, हज़ारों माँगें आईं। मगर ऐसी पुस्तक न तो हमारे यहाँ थी और न बाज़ारमें ही मिलती थी।

अब हमने सैकड़ों रुपया खर्च करके यह पुस्तक हिन्दी और बँगलामें छपाई है। रचना-शैली इतनी उत्तम है कि मूर्ख भी इसको पढ़ने से बिना गुरुके बँगला का अच्छा ज्ञान सम्पादन कर सकता है।

जिन्हें बँगला सीखने का शौक़ हो, जिन्हें बँगला के अपूर्व्व रत्न देखने हों, जिन्हें बंगाल देशमें रोजगार व्योपारऔर नौकरी करनी हो, उन्हें यह पुस्तक खरीद कर बँगला अवश्य पढ़नी चाहिये।

इस किताब में एक और खूबी है कि बँगला जाननेवाला इससे हिन्दी भाषा और हिन्दी जाननेवाला बंगला सीख सकता है। ऐसी उत्तम पुस्तक आजतक हिन्दीमें नहीं निकली। खरीददारों को जल्दी करनी चाहिये। देर करने से यह अपूर्व्व रत्न हाथ न आवेगा। दाम ॥) डाकखर्च ≤)

अक़्लमन्दीका ख़ज़ाना

यह पुस्तक यथा नाम तथा गुण है। ऐसी कौन सी नीति और चतुराई को बात है जो इस पुस्तक में नहीं है। भारतवर्षके प्राचीन नीतिकारों की नीति, गुलिस्ताँके चुनीदा उपदेश तथा और भी अनेक चतुराई सिखानेवाली बातें इसमें कूट कूट कर भरी गयी है।

जो दुनिया में किसीसे धोखा खाना नहीं चाहते, जो सभा-चातुरी सीखना चाहते हैं, जो विदुर, कणिक, चाणक्य, शुक्राचार्य्य की नीतिका स्वाद चखना चाहते हैं, जो शेख सादी की अपूर्व्व नीतिका मज़ा लूटना चाहते हैं, जो चीन देश के विद्वान बुद्धिमान कॉनफ्यूशियस की अक्लमन्दी की अद्भुत बातें जानना चाहते हैं, जो संसारमें सुखसे ज़िन्दगी बिताना चाहते हैं, उन्हें यह पोथी अवश्य खरीदनी चाहिये।

आज तक ऐसी उत्तम पुस्तक हिन्दी में नहीं निकली। यह पुस्तक हिन्दी में नयी ही निकली है। इस पुस्तकको दस पाँच दफ़े दिल लगाकर पढ़ लेने पर, महामूर्ख भी महा बुद्धिमान हो जावेगा। जिन्हें अपने

लड़कों को सदा चतुर और अक्लका पुतला बनाना हो वे इस पुस्तक को अवश्य खरीदें। दाम १) डाक खर्च ≋)

॥ राजसिंह ॥

वा

चंचलकुमारी।

यह राजसिंह सचमुच उपन्यासों का राजा है, जिस प्रकार से बनका राजा सिंह बनैले जन्तुओंपर अपना पूरा प्रभाव रखता है उसी तरह यह भी उपन्यासोंमें "सिंह" हो रहा है। भारतवर्ष की इतनी कायापलट हो जानेपर भी अभीतक चित्तोरका नाम नहीं गया है, अभीतक चितौरकी उज्ज्वल-कीर्त्ति दिग्-दिगान्तरमें गूँज रही है, राजपूतानेकी स्वाधीनता लोप हो जानेपर भी अभी तक चितौरका माथा ऊँचा हो रहा है। उसी प्रकारसे हमारे उपन्यासके नायक "राजसिंह"का नाम भी इतिहास जाननेवालोंके आगे छिपा नहीं है। राज सिंहकी वीरता, धीरता, चतुरता, बुद्धिमत्ता, प्रतिज्ञापालनकी पूरी पूरी सत्ता, अचल प्रतिज्ञा,

दूरदर्शिता, प्रजापालनमें तत्परता और निर्लोभता अभी तक उनका नाम निष्कलङ्क कर रही है। हमारा "राजसिंह" ऐतिहासिक शिक्षा देनेवाला एक रत्न है। जिस औरङ्गज़ेबकी कूटनीतिके आगे समूचा भारत थरथराता था, जिस मुगल सम्राट औरङ्गज़ेबकी अमल्दारीमें हिन्दू-राजे अपनी बहन बेटी व्याह देना अपना माथा ऊँचा करना समझते थे, जिस औरङ्गज़ेबके थोड़ेसे इशारेमें ही बड़े बड़े राजे महाराजे उनके पैरोंके नीचे लोटते थे, और जिस प्रतापी मुगल-सम्राटने बड़े बड़े राजाओंसे भी "जज़िया" नामक कर वसूल कर लिया था, उसी प्रतापी औरङ्गज़ेबके चंगुलसे एक राजपूत हिन्दू सुन्दरीको बचानेके लिये राजसिंहकी अटल प्रतिज्ञाका पूरा पूरा खाका इसमें खींचा गया है। इसको पढ़नेसे ही प्यारे पाठकोंको मालूम हो जायगा कि राजपूतों की प्रतिज्ञा कैसी अटल होती थी।

इस उपन्यासकी सभी बातें आश्चर्य्यमें डालनेवाली, कुतूहल को बढ़ानेवाली और शिक्षाकी देनेवाली हैं। रूप नगरके राजा विक्रमसिंहका सुन्दर राज्य, राजकुमारी चञ्चलकुमारी का एक तस्वीर देखकर राजसिंह-पर मोहित होना, अपनी तस्वीरका अनादर सुनकर औरङ्गज़ेबका क्रोधित होना, हज़ारों सिपाही भेजकर

चञ्चलकुमारीको बुलवाना, चञ्चलका राजसिंहको विचित्रपत्र भेजना, राजसिंहका विचित्र रीतिसे मुग़लोंके हाथसे चञ्चलको छुड़ाना, माणिकलालको कूट बुद्धि, औरङ्गज़ेबका भयानक क्रोध, विक्रमसिंहका भारी परिताप, चञ्चलको सखी निर्मलकी अद्भुत कार्य्यावली, औरङ्गज़ेबको कन्या जेबुन्निसाका मुबारकसे गुप्तप्रेम, औरङ्गज़ेबके शाही महलकी गुप्त घटनायें; राजसिंहका औरङ्गज़ेबके नाम पत्र भेजना, औरङ्गज़ेबका और भी क्रोधित होना, राजसिंहसे औरङ्गज़ेबकी भयानक लड़ाई-तीन तीन बार औरङ्गज़ेबका हारना आदि घटनायें पढ़ते पढ़ते पाठक उपन्यास-मय हो रहेंगे। ऐसा उत्तम मनोरम और सच्ची घटनाओंसे भरा हुआ उपन्यास बहुत कम देखनेमें आवेगा। सच तो यह है कि यह उपन्यास उपन्यासोंमें मुकुट हो रहा है। अवश्य पढ़िये, पहिलेही की भाँति सर्व-साधारणको शिक्षा दिलानेके लिये ३०६ पृष्ठोंकी उत्तम पुस्तकका दाम कुल ॥) डाक महसूल ≈) रक्खा गया है।

मानसिंह

वा

कमलादेवी।

यह उपन्यास मुसल्मानी अमलदारी की चालोंका बायस्कोप और हिन्दू राजाओंके नामका पूरा पूरा उदाहरण दिखा देनेवाला है। हिन्दू-संसार में ऐसे बहुत कम मनुष्य होंगे, जिन्होंने अकबरके दाहिने हाथ महाराज मानसिंहका नाम न सुना होगा। यह ग्रन्थ उन्हीं ऐतिहासिक वीरकी विचित्र कार्यावलीसे भरा हुआ है। मानसिंहके नामका कलङ्क, अपनी बहनको अकबरसे व्याह देना, महाराणा प्रतापका साहसपूर्ण उद्गार, हेमलताका विचित्र प्रेम, एक बाज़ीगरकी विचित्र चतुराई, बहराम खाँका कपट, नूरजहाँका सलीमसे प्रेम, शेरशाह तथा सलीमका बाहुयुद्ध, शेरखाँका नूरजहाँसे विवाह, कमलादेवीका दरबार, देवसिंहकी भीषण वीरता, राजपूतोंमें आपस की फूट, कमलादेवीका गुप्त प्रेम, इसी गुप्त प्रेमके कारण मानसिंहकी खराबी, महाराज मानसिंह और हेमलताका सच्चा प्रेम, मानसिंहके दुराचार, हेमलताकी निराशा, अरावली

पर्वतपर फिर मानसिंह और मुगलोंका भयानक युद्ध, मानसिंहकी सच्ची वीरता और रणकौशल आदि रहस्य-मय घटनाओंको पढ़ते पढ़ते पाठक अपने आपको भूल जायँगे। ग्रन्थ बड़ा ही रोचक और भावपूर्ण हुआ है। ऐतिहासिक-घटनाओंका इस सुन्दरतासे वर्णन किया गया है कि पढ़नेवालोंके हृदयमें एक एक बात चुभ जाती है। सच तो यह है कि भारतवर्षको इस दीन अवस्थामें ऐसे ही उपन्यासोंकी आवश्यकता है जो पढ़नेवालोंके हृदयपर उनके पूर्व्व पुरुषों का चित्र अङ्कित कर सकें। आशा है हमारा यह उपन्यास वही काम कर दिखायेगा। इस उपन्यासको पढते समय पाठकोंको परिणामपर भी अवश्य ध्यान रखना चाहिये। हम अब इसकी प्रशंसामें अधिक लिखना व्यर्थ समझते हैं; क्योंकि यह अपना नमूना आपही है। यदि आपलोग इसे मँगाकर ध्यान देकर पढ़ेंगे, तो आपलोगोंको मालूम हो जायगा कि विज्ञापनका एक एक अक्षर सत्य है। अवश्य पढ़िये, ऐसा अवसर बार बार हाथ नहीं आता। सर्व साधारणके सुभीतेके लिये २५६ पृष्ठोंकी पुस्तकका दाम कुल ॥=) रक्खा गया है। डाकमहसूल ≡)

गल्पमाला

यह पुस्तक हाल में ही प्रकाशित हुई है। इसमें एक से एक बढ़ कर मनोरञ्जक और उपदेश पूर्ण दस कहानियाँ लिखी गयी हैं। पढ़ना आरम्भ करने पर छोड़ने को जी नहीं चाहता। हिन्दीके अच्छे अच्छे विद्वानोंने इस पुस्तक की प्रशंसा की है। पढते समय करुणाकी नदी लहराती है। कभी प्रेमका समुद्र उमड़ने लगता है। कभी पुण्यकी जय देख, हृदय में पवित्र भावका सञ्चार होता है और कहीं पाप के कुफल को देख कर परमात्मा के अटल न्यायकी महिमा प्रत्यक्ष आँखोंके आगे दिखाई देने लगती है। इस उपन्यासोंके पढ़ने में जो आनन्द आ सकता है, वह केवल गल्पमाला ही से मिल सकता है। दाम ।=) डाकखर्च =)

बादशाह लियर

यह विलायतके जगद्विख्यात कवि शेक्सपियर के "किंगलियर" नामक नाटक का गद्य में बहुत ही मनोमोहन और रोचक अनुवाद है। एकबार पढ़ना आरम्भ करके बिन खतम किये पुस्तक के छोड़ने को

जो नहीं चाहता। शेक्सपियर ने बादशाह लियर और उसको तीन कन्याओंका चरित्र बहुत ही उत्तम रूपसे लिखा है। मनोरञ्जन होनेके अलावः इस पुस्तक से एक प्रकार को शिक्षा भी मिलती है। पढ़ते पढ़ते कभी हँसी आती है। कभी बूढ़े बादशाह लियर की दुर्दशा का हाल पढ़ कर आखोंमें आँसू भर आते हैं! हिन्दी-प्रेमियोंको यह पुस्तक भी अवश्य ही देखनी चाहिये। दाम ॥) डाकखर्च ।)

गुलिस्तां

यह वही पुस्तक है जिसकी प्रशंसा तमाम जगत् में हो रही है। वलायत, जरमनी, फ्रान्स, चीन, जापान और हिन्दुस्तानमें सर्व्वत्र इस पुस्तकके अनुवाद हो गये है। लेकिन अफ़सोस की बात है कि बेचारी हिन्दी में इसका एक भी पूरा अनुवाद नहीं हुआ। इसके रचयिता शेखसादीने इसमें एक एक बात एक एक लाख रुपये को लिखी है। वास्तव में यह पुस्तक अनमोल है। इसी कारण हे यह पुस्तक यहाँ मिडिल, ऐण्ट्रेन्स, एफ० ए० बी० ए० तक में पढ़ाई जाती है। इस की नीतिपर चलनेवाला मनुष्य सदा सुख से रह कर जीवन का बेड़ा पार कर सकता है। मनुष्य

मात्र को यह पुस्तक देखनी चाहिये। इसका अनुवाद सरल हिन्दीमें हुआ है। छपाई सफ़ाई भी देखने लायक है। दाम १) डाकखर्च ≤)

राधाकान्त

(उपन्यास)

आज कहने को तो अनेक उपन्यास निकलते हैं किन्तु वह सब रद्दी हैं। उनसे पाठकोंके मन और चरित्र के ख़राब होनेके सिवाय कोई लाभ नहीं है। इसके पढ़ने से एक अमीर की सच्ची घटना आँखों के सामने आजाती है; आदमी धनमस्त होकर कैसी कैसी ठोकरें खाता है; खोटी संगति में पड़ कर,धनवानों-के लड़के कैसे ख़राब हो जाते हैं; खुशामदी लोग बड़े आदमियों को कैसी मिट्टी ख़राब करते हैं; जब तक धन हाथमें रहता है तब तक खुशामदी मधुमक्खियों की तरह चिपटे रहते हैं धन स्वाहा होते ही वही बात भी नहीं पूछते; रण्डियाँ कैसी मतलबी और धन की प्रेमी होती हैं और सच्चे और आदर्श मित्र कैसे होते हैं।

इस पुस्तकके देखने से उपरोक्त विषयों के सिवाय ईश्वर में प्रेम होने, ईश्वर पर एक मात्र भरोसा करने, विपत्तिकाल में धैर्य्य धारण करने की युक्तियाँ भी मालुम

होंगी। अमीरों को तो इस पुस्तक को अवश्य ही बालकों को पढ़ाना चाहिये। इन्हीं बातों के न जानने और ऐसी पुस्तकों के न पढ़ने से ही लाख के घर खाक में मिल जाते हैं। पुस्तक अनमोल है। छपाई भी इतनी सुन्दर है कि लिख नहीं सकते। दाम ॥) डाकखर्च ≤)

भारत में पोर्चगीज़।

(इतिहास)

यह एक पुराना इतिहास है। इस में यह बात खूब ही सरल भाषा में दिखायी गयी है कि पहले पहल फिरङ्गी लोग भारत में कैसे आये, उन्होंने कैसे भारत का पता लगाया। सब से पहले भारत में आनेवाले फिरङ्गी को सात समन्दर चौदह नदियाँ पार कर के भारत की खोज में आने के समय कैसे कैसे कष्ट उठाने पड़े। फिरङ्गियों (पोर्चुगीज़ों) ने दक्खन भारतमें कैसे २ अत्याचार किये; भारत का धन वे अपने देशमें कैसे लेगये; भारतीय ललनाओं की कैसी बेइज्जती की; अन्तमें भगवान भारतवासियों पर दयालु हुए, उन्होंने शान्तिप्रिय, प्रजावत्सला, न्यायशीला ब्रिटिश जाति को

भारतवासियों के कष्ट निवारणार्थ भारत में भेजा। अँगरेज़ों ने सब भारतवर्ष अपने हाथ में लिया। मुसल्मान और पोर्चुगीज़ों को भगा कर भारत में शान्ति स्थापन की। आज अँगरेज़ महाराज के छत्रतले हम भारतवासी सुख चैन की बंसी बजाते हैं। देशमें लूट मार काटफाट बन्द है। शेर बकरी एक घाट पानी पीते हैं। एक मह्हा बूढ़ी डोकरी भी सोना उछालती फिरती है पर कोई यह कहनेवाला नहीं है कि तेरे मुँह में कै दाँत हैं।

यह सब हालात इस पुस्तक के पढ़ने से मालुम होंगे। कौन भारतवासी इन गुप्त और पुराने विषयों को न जानना चाहेगा ? प्रत्येक भारतवासी को अपनी जन्मभूमि का पुराना हाल जानना चाहिये और अँगरेज़ों की भलाई के लिये उन का कृतज्ञता-भाजन होना चाहिये। दाम ॥) डाकखर्च ≠)

बाल गल्पमाला

यह पुस्तक हिन्दी जगत् में बिल्कुल नयी और मनुष्य मात्र के देखने योग्य है। मनुष्य मात्र को चाहिये कि इसे पढ़े और अपनी सन्तान को पढ़ावे। अगर लोग इसे अपने बालकों को पढ़ावें तो यह अधी

गति पर पहुँचा हुआ भारत फिर उन्नतिके उच्चतम शिखर पर चढ जाय। घर घरमें सुख चैनकी बाँसुरी बजने लगे। लड़के मा बाप की आज्ञा पालन करें और सभी स्त्रियाँ पतिव्रता हो जायँ।

इसमें रामचन्द्र की पितृ-भक्ति; भीष्म पितामह का कठिन प्रतिज्ञा पालन; लक्ष्मण और भरतका भ्रातृ-प्रेम; श्रीकृष्ण की विनय; युधिष्ठिर और महात्मा वशिष्ठ की क्षमाशीलता; हरिश्चन्द्र का सत्यपालन; मुद्गलका आतिथ्य-सत्कार; आरुणिक की गुरुभक्ति; महाराणा प्रतापसिंह के प्रोहित की राजभक्ति; चण्डका कर्त्तव्य पालन और कुन्तीका प्रत्युपकार खूब ही सरल और सरस भाषामें दिखाया है। अधिक क्या कहें पुस्तक घर घरमें विराजने और पूजी जाने योग्य है। दाम ।=) डाकखर्च =)

अलिफ़ लैला

पहला भाग।

यह ऐसी उत्तम किताब है कि जिस का तरजुमा फ्रैंच, जरमन, अँगरेजी, रूसी, जापानी आदि भाषाओंमें तीन तीन और चार चार प्रकार का हो चुका है। हमने भी इसका तरजुमा एक निहायत बढ़िया अँगरेज़ी

पुस्तकसे किया है। तरजुमे में कोई विषय छोड़ा नहीं है। भाषा इसकी निहायत सीधी साधी और ऐसी सरल रक्खी है कि थोड़े पढ़े बच्चे से लेकर बहुत पढ़े हुए विद्वान तक इससे आनन्द लाभ कर सकेंगे। उपन्यासोंका स्वाद चखे हुए पाठकोंको यह पुस्तक बहुत ही प्यारी लगेगी। एकबार पढ़ना शुरू करके पढ़नेवाले खाना पीना भूल जायँगेऔर इसे समाप्त किये बिन न रहेंगे। पढ़नेवाले औरतों की चालाकियाँ, उनकी बेवफाई, आदि पढ़ कर हैरत में आजायँगे और कहने लगेंगे कि हे भगवन्! क्या औरतें इतनी मक्कारा होती हैं! देव राक्षस सन्दूकोंमें बन्द रख कर भी अपनी औरतोंकी चालाकी न पकड़ सके! औरतों ने जब देव जिन्नों के ही चूना लगा दिया तब मनुष्य बिचारा क्या चीज़ है? २११ सफोंकी बड़ी पुस्तक का दाम केवल ॥) और डाकखर्च ।) लगेगा।

रामायण-रहस्य

प्रथम भाग

हिन्दी जगत् में यह भी एक नयी चीज़ है। रामायण का परिचय देना अनन्त सागर सलिलमें दो चार बिन्दु जल डालना है। ऐसा भावमय, ऐसा सुमधुर,

ऐसा शिक्षाप्रद, ऐसा भक्तिमय, ऐसा रसीला और दूसरा ग्रन्थ संसार में नहीं है।

इस जगत् मे कितने ही ग्रंथ बने और बन रहे हैं परन्तु रामायण के समान किसी का आदर न हुआ। आदर कहाँ से हो, इसके समान और ग्रन्थ है ही नहीं। मातृ-भक्ति, पितृ-भक्ति, स्त्री-धर्म, मित्र-धर्म, राज-नीति, प्रजा-धर्म, प्रजा-पालन, युद्ध-शिक्षा, युद्ध-नीतिका जैसा सुन्दर चित्र रामायण में है वैसा और किसी ग्रन्थमें नहीं है। रामचन्द्रकी पितृ-भक्ति, लक्ष्मण और भरत की भ्रातृ-भक्ति, सीताकी पति-प्रेम, दशरथका पुत्र-प्रेम, हनूमान की स्वामिभक्ति का नमूना जैसा इस ग्रन्थमें है और ग्रन्थोंमें नहीं है।

महात्मा तुलसीदासजी रामायण लिखकर अमर हो गये है किन्तु अनेक लोग ऐसे है जो तुलसी दासजी की गूढ भावमयी कविता को समझने मे असमर्थ होते है। इसीसे हमने वाल्मीकि, अध्यात्म, मयङ्क और तुलसीकृत रामायणों के आधारपर इसे अत्यन्त सरल हिन्दीमे एक विद्वान् लेखक से लिखवाकर प्रकाशित किया है। जिन्हें वाल्मीकि आदि सारी रामायणों का सरल भाषामें स्वाद लेना हो वे इसे अवश्य देखें। बहुत क्या लिखें चीज़ देखने ही योग्य है। पढ़ते पढ़ते बिना खतम किये छोड़ने को जी नहीं चाहता। भाषा उप:

न्यासों को सी है; इससे चौगुना आनन्द आता है। घटनाएँ पानीकी घूँटकी तरह दिमाग़ में घुसती चली जाती हैं। छपाई भी इतनी सुन्दर हुई है कि देखते ही पुस्तक को छाती से लगाने को जी चाहता है। यह प्रथम भाग है। इसमें बालकाण्ड और अयोध्या-काण्ड पूरे हुए हैं। [बड़े आकारके १६० सफोंकी पुस्तक का दाम ॥) डाक खर्च ≈)

हिन्दी भगवद्गीता।

गीताकी एक एक शिक्षा, एक एक बात, मनुष्यको संसार के दुःख क्लेशोंसे छुड़ाकर तत्वज्ञान सिखाती है और संसारी मनुष्योंके अशान्त मनको शान्ति देती है। आत्मज्ञान जितनी अच्छी तरह इसमें कहा गया है और पुस्तकों में नहीं कहा गया है। इसके पढ़ने समझने और इस पर विचार करनेसे मनुष्य संसार के बन्धनोंसे, जन्म मरणके कष्टसे, छुटकारा पाकर मोक्ष लाभ करता है। महाराज कृष्णचन्द्रका एक एक उपदेश पृथ्वी भरके राज्य से भी बढ़कर मूल्यवान है। मनुष्य मात्रको यह भगवद्वाक्य देखना, पढ़ना और समझना चाहिये और

अपना भविष्य सुधारना चाहिये। आज तक गीताके कितने ही अनुवाद हो चुके हैं; मगर कुछ तो अधूरे है और कुछ ऐसी पुराने ढाँचेकी अटपटाँग हिन्दीमें अनुवाद हुए है, कि उनका समझना ही महा कठिन है; इसलिये गीता प्रेमियोंका मतलब नहीं निकलता।

यह अनुवाद एकदम सरल हिन्दीमें हुआ है और इतनी अच्छी तरह हरेक विषय समझाया है, कि मूर्खसे मूर्ख बालक भी गीताके गहन विषयोंको बड़ी आसानीसे समझ कर हृदयङ्गम कर सकेगा। खाली गीता-पाठ करनेसे कुछ लाभ नहीं हो सकता; किन्तु गीताको पढ़कर समझने और विचार करनेसे जो लाभ मनुष्यको हो सकता है वह त्रिलोकी के राज्यसे भी बढ़कर है। अधिक क्या कहें इस पुस्तकमें ग्रन्थकर्त्ताने जैसी हरेक विषयको समझानेकी कोशिश की है वैसी किसीने भी नहीं की है। जिनके पास गीताके और और अनुवाद हों, उन्हें भी यह अनुवाद अवश्य देखना चाहिये।